सुकांत के सपनों में

क कविता प्रकाशन, बीकानेर

सुकांत के सपनों में

मालचंद तिवाड़ी

उन अंगारों का कवि है (कविता संग्रह 1981)
सरगम (कविता संग्रह 1984)
पता बी-50, गोरधनपुरा, बीकानेर विश्वविद्यालय, बीकानेर—470003

© मालचंद तिवाड़ी

प्रकाशक कविता प्रकाशन तरीदाड़ा, बीकानेर

संस्करण प्रथम 1987

मूल्य पचास रुपये मात्र

मुद्रक विकास आर्ट प्रिंटर्स शाहदरा दिल्ली 32

SUKANT KE SAPNO MEN (Short Stories)
By Mal Chand Tiwari Price Rs 35 00

अपनी चदा के लिए

क्रम

यहा भी हँसा	9
सुकान के सपनो मे	16
आहट	20
बार्ड का कुत्ता	32
विरासत	55
रतजगा	100
पुण्य-स्मरण	112
नायक नायिका	119
लीला	125

पल बीत जाते हैं—हमारी धुधली आंख के आगे। इस मांज कर तो दो कोई!

देखो यहां मत हँसना। बात दूसरी है। हां, डॉक्टर नहीं आया। तुमने खड़े खड़े थक कर दीवार की टेक ली, तो मैं समझ गया कि तुम मन थाम हो पर देह नहीं थमती। रोगी थी तुम्हारी देह। इसी रोगी देह में मैंने उस दिन कामना की गूंज सुनी। तुमने आसमानी ब्लाउज के नीचे स्लेटी रंग की मिडी पहन रखी थी। मिडी के घेर पर आसमानी बॉर्डर था जिसने तुम्हारी पोशाक को उतना ही सप्राण कर रखा था, जितना मुस्कान तुम्हारे चेहरे को करती है। लम्बे केश एक तरफ निकालकर तुम ने वेणी गूंथी थी, जिसके लटकते छोर पर रिबन का सफेद फूल था। कुल मिलाकर तुम्हारा समूचा अस्तित्व इस साक्षात् संदेश जैसा था कि कामना ही सर्वस्व है जो आदमी को जीने के अहसास से अछूत, कीड़े से अलहदा रखती है।

तुम्हें मालूम है? शायद हो कि कामनाओं का होना कुछ नहीं होता। आदमी को उनकी भरपूर देखभाल करनी पड़ती है। उन्हें वैसे ही लाड़ दुलार और डांट फटकार की दरकार होती है जैसे आदमी की औलाद को, आदमी की कामनाओं के बदचलन आवारा होने का खतरा उसकी औलाद से कहीं बढ़कर होता है।

"आओ, चलकर बैठ जाएँ मैं तुम्हें रोगी प्रतीक्षालय में ले आया।

लाल पत्थर की चौड़ी सीढ़ियां पारकर हम भीतर आए। भीतर अस्पताल की जानी पहचानी बदबू तर रही थी जो गंदी दीवारों के बीच ज्यादा ही तेज लगी। छत इतनी ऊंची थी कि ऊपर देखने पर मजा आया। इसके कोनों में जाले और बीच में धूल स्नात पंखा बंद हालत में लटक रहा था। यों ही, इस पंखे की तुलना मैंने मरे हुए मुनगे के साथ की, तो तुम हँसी नहीं दबा सकीं। अहाते के दोनों बाजू में लम्बी बेंचें थीं। हमारे बीच से होकर लोग आ जा रहे थे।

हम बेंच पर बैठे थोड़ी देर हुई कि वह आ पहुंची। हां, उसी की बात है—वह पीली चूनरीवाली! याद आया उसका बड़े बड़े नीले बूटोंवाला

छींट का घाघरा ? एक बार देखते ही तुम्हारी आँखें जुड़ा गई थीं।

साथ में एक मजबूत कद काठी की बूढ़ी औरत थी। काले घाघर पर कत्थई लूगड़े का पहनावा उसके वैधव्य का सूचक था, जिसकी न जाने कहाँ से वह अभ्यस्त सी लग रही थी। पीली चुनरीवाली इस बुढ़िया की गोद में कुछ देर लुढ़की पड़ी रही, फिर आँखें मूँदकर सो गई। कहीं से एक आदमी उसके पास आया। तीस पैंतीस की अवस्था का और शक्ल से उजड्ड, जिसने फिजूल उतावल में लड़की की नाड़ी टटोली और चला गया। जाते हुए मुझे इसकी बत्तीसी की झलक मिली। दाँत इतने पीले थे जैसे मुँह में हल्दी घुली हो।

तुमने या ही पूछा था कि यह इस पीली चुनरीवाली का क्या हो सकता है ? फिर तुम बोली कि ठीक होने पर यह पीली चुनरीवाली बड़ी सुंदर लगेगी। मैंने बुढ़िया की गोद में पड़ा उसका मुँह गौर से देखा। वह प्राय अचेत थी। उसके मुँह से लार बहकर सूख चुकी थी। मक्खियाँ मंडरा रही थीं और उघड़े सिर के रूखे बदरंग बाल बिखरे पड़े थे।

"पानी " सहसा लड़की ने कराह भरी।

'पानी ?" बुढ़िया ने बदहवासी में इधर उधर देखा और पुकारा, "रामरिखिया ओ रामरिखिया रे !"

"ए डाकरी ! क्यों शोर मचा रही है ? यह खेत नहीं है, समझी ?" बुढ़िया के दो तीन बार पुकार चुकने पर एक कम्पाउण्डर निकला और उसे धमकाकर गायब हो गया।

"तुम जाओ, उठो !" तुमसे रहा नहीं गया। तो मुझे कोंचकर बोली, "बुढ़िया को पूछो, क्या चाहती है।'

तुम्हें नहीं मालूम कि मैं सिर्फ तुम्हारे कहने की राह देख रहा था। तब भी मैंने तुमसे पूछा, "मेरे पीछे तुम अकेली ।"

' जाओ न, मैं अकेली कहाँ हूँ? लोग जो हैं। जाओ!" तुमने यों तुनक कर कहा, जैसे सारा कसूर मेरा हो।

मैं बुढ़िया के पास गया। थोड़ी पूछताछ की और बर्तन लेकर पानी ला दिया।

"पीली चुनरीवाली को क्या हुआ है?" पानी देकर लौटा तो तुमने

बेसब्री से पूछा।

"सुनोगी ?"

"बताओ न !" तुम्हारी बेसब्री बढ़ने लगी।

"सुनो।" मैं धीमे धीमे बताने लगा, "लड़की का छ माह का गर्भ था। कल इसके पति ने पेट पर लात मार दी। खून बहने लगा। रात तक हालत बिगड़ गई तो ऊँट-गाड़े में डालकर गाँव से यहाँ लाए हैं। अब डॉक्टर की राह देखी जा रही है।"

"यह यह आदमी कौन था ?" तुमने पीले दाँतोवाले के बारे में सहमकर पूछा।

"लड़की का सगा चाचा। बुढ़िया ने कहा कि इसे जरा भी मोह ममता नहीं है, बस, लोक लाज से चला आया है।"

"लड़की का बाप ?"

"बुढ़िया ने कहा कि कोई महीना भर पहले उसे खेत में साँप डसा था गाँव में झाड़ फूँक में पार नहीं पड़ी, तो इसी अस्पताल में लाए थे। यहाँ पहुँचने तक साँस बाकी थी, पर डाक्टर ने छूते ही सिर हिला दिया था। आज लड़की का क्या होगा। बुढ़िया को यही चिन्ता है।"

बुढ़िया की गाथा में डूबकर मैं देख ही नहीं पाया कि तुम्हारी आँखें छलछला आई हैं। तुमने रुँधे गले से पूछा, "गाँव में कुछ भी इलाज नहीं ?"

इसकी जरूरत क्या है ?" तुम्हारे ऐसे मासूम सवाल पर अनजाने ही मैं चिढ़ गया था, "इन डाक्टरों की राय है कि गाँव की आबो हवा में कोई बीमार हो ही नहीं सकता। ये, ये सबके सब ढोंगी हैं।" कहकर मैंने अपनी तर्जनी तमाम गँवई मरीजों पर लहरा दी थी।

तुमने गर्दन झुकाई। फिर रूमाल सटाकर तुमने अपने आँसू आँखों में ही रोक डाले।

"डाक्टर साहब आ गये !"

"डाक्टर साहब आ गये !"

समवेत स्वर उभरने लगा। भीड़ हड़बड़ाई और पलभर में डाक्टर के कमर पर लपककर छात की गर्दन में जमा होने लगी। पीली धुनरी

वाली बेहोश थी। बुढ़िया भिनभिन कर रही थी जिस पर ध्यान देने की फुरसत किसी को न थी। यहाँ तक कि हमें भी उठना पड़ा।

अस्पताल से लौटने तक तुम एकदम निढाल हो गईं। तुम्हारी आँखों में रुलाई फूटने का अंदेशा था। हलकी-फुलकी बातों में उलझाए मैं तुम्हें रेस्तराँ में लाया। केबिन में बिठाकर तुम्हें बहलाने के मैंने हजार यतन किये।

"सुनो, ऐ!" गाल पर हलकी सी चपत लगाकर मैंने तुम्हें पुकारा।

'ऊँ ऽ। क्या करते हो?" तुम सुस्ती छोड़ने को तैयार नहीं थी।

"कुछ याद करोगी?"

"क्या?"

"अस्पताल की सीढ़ियाँ और फन।" मैं बोला।

'क्या मजाक करते हो। वे क्या याद करने लायक हैं?' तुमने उकताकर कहा।

"हाँ है। तुमने देखा, लोग अस्पताल में आकर कैसे डर-सहम हो जाते हैं। उनके पैर उठने की बजाय घिसटने लगते हैं।' याद करो, सीढ़ियाँ और फन बीच से किस कदर घिसटकर रह गये हैं। फिर कुछ थमकर मैंने जारी रखा, 'सिर्फ एक ही आदमी को मैंने पैर उठाकर चलते देखा था। लेकिन वह भी सामने से गुजरा, तो उसकी पोल खुल गई। बेचारे के एक पैर में चप्पल ही नहीं थी। टूटी हुई चप्पल उसने हाथ में लेकर पीठ-पीछे छिपा रखी थी। मारे शर्म के वह भाग रहा था। उसकी झेंपी सूरत देखती, तो तुम हँस हँसकर अपना बुरा हाल कर लेती। मैं तुम्हें दिखाता, अगर उस पोली चुनरीवाली के फेर।"

बात के अंत में मैंने आँखें नचाकर तुम्हें भेदी आँखों से देखा। मैं समझ रहा था कि तुम्हें हँसाने का मेरा यह अंतिम और अचूक उपाय अब जरूरी है।

तुमने नजर उठाई। कंजूसी से होठ खोलकर धीमे से हँसी। खुशी और शिकायत की तुम्हारी यह साझी अदा है। जिसे तुम खुद देख लो तो अपने पर तुम्हें उतना ही प्यार आएगा जितना मुझे। मैंने विभोर होकर अपना हाथ तुम्हारी तरफ बढ़ाया। तुमने अपना मुखड़ा मेरी हथेली पर टिका

दिया।

"चाय मे मक्खी न पड जाए, भैया जी !"

काउण्टर पर से चिल्लाकर शायद किसी ऊँघत ग्राहक को सावधान किया गया। हमें भी होश आया। हमारी चाय भी अनछुई पडी था। कुछ पहले बेयरा रख गया था।

"तुम बहुत बदमाश हो !" भावावेश म मुझे तुमने आज पहली बार 'तुम कह डाला और बुरी तरह झेंप गइ।

"और तुम शरीफ? एक फल होता है—शरीफा। खाने म बडा लजीज पर ऊपर से खुरदुरा।"

अबकी तुम खुलकर हँस दी, ऐसे कि फश पर नयी बाजरी के दाने बिखर रहे ह। मैं इतराया और मेज के पार तुम्हारे एकदम करीब चला आया। मैंन तुम्हारे कधे पर हाथ रखा, तो तुम उसे थामकर लिपट सी गइ। मुखडा तुमने मरी बाह से सटा दिया। मैंन देखा कि एक जोडी कमल फिर चू पडे ह।

"अना !" मैंने तुम्हें यही नाम दिया। याद है चेखव की कहानी—कुत्ते वाली महिला ! मैंने तुम्हे यह कभी पढकर सुनाई थी। तुम्ह इसकी नायिका का नाम मैंने क्यो दिया ?

तुम सचमुच रो रही थी। मैंने तुम्हारा भीगा मुखडा अपनी हथेलियो के दाने मे भरकर तुमसे पूछा "हँस रही थी या सिफ हँस हँस कर आसू बहा रही थी ?'

'वह पीली चुनरीवाली शायद उसको खून चढेगा। वह बच जायगी ?" रोते रोते तुम पूछने लगी।

मैं क्या बताता ?

"कबिन छाडिय ग्राहक इतजार कर रहे ह। काउण्टर से आवाज लगी। हम उठना पडा।

मैंन तुम्ह बताया नही मैं काउण्टर पर पैस चुकान रुका, तो हमारी चाय लेकर कैबिन मे आनेवाला लडका मेरी तरफ आँख मारकर मुस्कुराया था। पता नहा, मुझे किस मगीन सफलता पर बधाई दे रहा था। हँसा, यहाँ भी हँसो और कहा कि मरी बातें तुम्हारी समझ म नहीं

आती—बस, उन पर हँसी आती है।

जो हो, पीली चुनरीवाली के बारे मे तो जान लो। मैं दुबारा अस्पताल गया था। मालूम हुआ, डॉक्टर सबसे अंत मे वहा तब पहुँचा जब बुढिया न चीख-चीखकर अस्पताल सिर पर उठा डाला।

सुनो, फिर क्या हुआ ?

डॉक्टर ने लडकी की बंद आखें खोलकर भीतर झाका, तो मौन डेरा डाले बठी थी। स्टेथोस्कोप पहले ही चुप था। अब बेचारा डाक्टर सिवाय अफसोस मे सिर हिलाने के अलावा क्या करता ? उसने यही किया कि बुढिया ने बिल्ली की तरह झपटकर डॉक्टर का मुह नोच लिया। लोग दौडे और बुढिया को पकडा। सरत-जान बुढिया कहाँ काबू म आती ? इजक्शन देकर उसे बेहोश करना पडा।

डॉक्टर ने कहा, "बुढिया दौरे से पागल हो गई है।"

जरा तुम भी सोचना कि बुढिया पागल हो गई या ?

सुकात के सपनों में

मेरा एक नन्हा सा बेटा है—सुकात, बेहद नटखट और अथाह जिज्ञासु। उसके सवालों और बेसब्री से लगता है, आज और इसी पल वह सब-कुछ जानना चाहता है। वह जागता है तब तक उसके मुंह से सवालों की झड़ी लगी रहती है। मैं उसके भविष्य से बहुत आशंकित हूं क्योंकि जानता हूं, सवाल उठाना, दुनिया में सुख से जीने नहीं देता।

इन दिनों मेरे शहर के चौफेर फैले मरुस्थल में भारतीय थल सेना अभ्यासरत है। रोही से आती फौजी ट्रकों और टैंकों की घरघराहट से हरदम मेरा आंगन और पिछवाड़ा गूंजता है। राशन और दूसरे सामान के बहाने फौजी जीपों की शहर में भी आमद रफ्त होती है। कई फौजी अपनी बंदूकों समेत भी नजर आते हैं। सुकात आते जाते इनको देख चुका है और फौजी और बंदूक दोनों को पहचानने लगा है।

'पापा, फौजी बच्चों को उठाकर ले जाते हैं?' परसों रात उसने नींद से पहले, रजाई में बैठे बैठे अचानक मुझ से पूछा।

'नहीं बेटा। किसने कहा?"

'सीमा।' सुकात ने बताया 'वह कहती है कि फौजी बच्चों को अपनी मोटर में डालकर ले जाते हैं।"

मैंने उसे गौर से देखा—भय की परतें उसके मुंह पर उघड़ने लगी।

'कुछ देर मुझे सोचने में लगी, कि उसके भय को धो पोंछकर कैसे परे करूं। मैंने कहा, "नहीं बेटा, फौजी, बेचारे तुम्हें क्यों उठाकर ले जाएंगे। उनके तो अपने ही तुम्हारे और सीमा जैसे प्यारे प्यारे, भोले भोले बच्चे होते हैं।'

सुकात न मेरी तरफ देखा, तो निश्चित हो गया कि मेरी बात उसके भीतर नहीं उतरी। वही हुआ, उसने अगला सवाल छोड़ा, "फौजी किसे मारते हैं, पापा ?"

"किसी को नहीं।" मैंने भरसक हँसकर कहा।

"तो वे बंदूक क्या रखते हैं ?"

मेरे तो समूचे ज्ञान की कलई खुलने लगी। देश की सीमाएँ युद्ध की सभावनाएँ, आतरिक उपद्रव, चीन या पाकिस्तान किसी म सुकात का उत्तर नहीं था। मैं उसके लिए माकूल उत्तर ढूढ रहा था कि उसने फिर पूछा, "बताओ न, पापा फौजी बंदूक से क्या करते हैं ? सीमा तो कहती है, फौजी हरेक को मार सकते हैं। फौजी आपको भी मार सकते है, पापा ?"

सुनकर मेरे अग अग मे सिहरन दौड गयी। सुकात को शात करना पहले जरूरी था, इसलिए मैंने उसे भुलाने को कहा, "फौजी सिर्फ दूसरे फौजियों को मारते हैं। वे जब " मेरी जबान म ऐंठन हुई लेकिन मैंने कह डाला, "वे जब अपने देश पर हमला करते हैं, न तब !"

"देश, देश क्या होता है, पापा ?"

"देख बेटा, तू अभी छोटा है न ! सब बातें समझेगा नहीं, अभी सो-जा। कल हम खूब बातें करेंगे। अच्छा, एक बात बतायेगा, कल तू न सीमा के घर क्या खाया ?"

"खीर।" सुकात रानी होता बोला।

"अब सो जा, कल हम भी खीर बनवाएँगे।" कहते कहते मैंने रजाई लगभग जबरन उसे मुह पर ओढाई। वह इठलाता सा, मचलता सा रजाई मे दुबक गया।

कोई दसेक मिनट बाद मुझे सुकात की चीख सुनाई दी। मैं जाग रहा था, उसे छाती से लगाया और पूछा, "सुकात, सुकात बेटा, क्या हुआ ? बता बेटा तू ने क्या देखा ?"

पसीने से भीगा शरीर, उखडी साँस और भय से विस्फारित आँखो से उसने मेरी तरफ देखा और बोला, "फौजी ने आपको गोली क्यो मार दी, पापा ?"

मैंने हँसते हँसते उसे कहा, "सो जा सो जा सुकांत मैंने तुमसे कहा था न, कि कल अपने यहाँ भी खीर बनाएँगे।'

और परसों पूरी रात मुझे नींद नहीं आई, फिर भी सुकांत के सपने की कोई तफ़सील मेरे हाथ नहीं लगी। आप भी कुछ अनुमान करेंगे कि मेरे सुकांत ने सपने में क्या देखा ?

खैर, इसे छोड़िये। और सुनिये सुकांत की बातें।

गये सोमवार को जब मैं दफ़्तर से घर पहुँचा, सुकांत मेरी बाट जोहता मिला। घर में घुसते ही पूछा "पापा, शांति पाठ क्या होता है ?"

'शांति पाठ ?'

मैं भौचक रह गया कि इस कोमल बच्चे के दिमाग में इतना विकट पाठ कैसे घुस पड़ा। कोई समाधान जरूरी था, सो मैंने समझाया, "हम सब हिल मिलकर रहें, लड़ें झगड़ें नहीं और कोई दुखी न हो, तो शांति पाठ उसको कहते हैं।"

"अं ? आपको मालूम भी नहीं।' सुकांत ने दो टूक कह डाला।

"तो फिर तुम बताओ।" मैं सुनकर मुसकुराया।

'मेरी स्कूल में है न बहनजी हैं न, हम सबको आँखें बंद करवाकर, हाथ जुड़वाकर लाइन में खड़ा करती हैं और कहती है, चुपचाप खड़े खड़े शांति पाठ करो। इसे कहते हैं शांति-पाठ।'

मुझे जोर से हँसी आयी। हँसकर मैंने देखा कि सुकांत रोने लगा है। रोते रोते उसने बताया "पापा, लड़के रोज शांति पाठ में मेरे पीछे से चिकोटियाँ काटते हैं। कहते हैं—आँखें बंद, आँखें बंद नहीं तो बहनजी मारेंगे। शांति पाठ में आँख बंद न हो तो बहनजी क्या मारती हैं पापा?"

आप यह बताइये कि मैं सुकांत को क्या बताता ?

कोई शांति पाठ पढ़ते हुए मार से आतंकित रहे, यह क्या बर्दाश्त करने जैसी बात है ?

और एक दिन यही सुकांत धूप में बैठा था। मेरी तरफ़ उसकी पीठ थी। मेरा ध्यान गया कि बहुत देर से वह अविचल और शांत बैठा है। यह अविश्वसनीय बात थी। मैं धीमे से चलकर उसके पीछे गया और देखने लगा कि वह कहाँ उलझा है !

उसके दाये हाथ म एक बॉल पेन थी जिसे वह हाफ पैण्ट स नीच अपने ना घुटने पर अधाधुध चलाता जा रहा था। कुछ दर देखकर मैंने उस दुलारते हुए पूछा, "सुकान, क्या कर रहा है र ?"

"घुचघुचिये।" बिना जरा सी भी गदन उठाये, पेन चलाते हुए सुकात बोला।

"और इस घुटन पर क्या किया ?" मैंने उसके दूसरे घुटने पर स्याही देखकर इशारा किया।

"घुचघुचिये।" वह फिर उसी तरह बोल गया।

"तो फिर दुबारा क्या कर रहा है ?"

"पहले गलत हो गये पापा।" उसने इस बार गदन उठाई और मुझसे आँखें मिलाकर बिझिझक बता डाला।

मैं स्तब्ध रह गया सुनकर कि इस नानायक के सवाल ही नहीं, जवाब भी खतरनाक हैं।

आहट

"अरे ! रुघला ऊ !" टिकुडी हाथ भर ऊची खाइ म फांदकर बाहर निकली और फावडा हाथ से फेंककर आसू के खेत मे खडे रुघले को जोर से पुकारा।

"तू खाई पूरी करके ही रोटी पाएगी क्या ?" रेत और आंच से बदरग अपने छोटे छोटे पैरा स दौडता रुघला आ धमका और अपनी बहन की सभावित रोस स बचा के लिए बहाना घड डाला जमे।

'खाई के मनकाये ! उस आसिए स क्या कह रहा था ?" टिकुडी पर रुघले की चतुराई बेअसर गुजरी और उसने लपककर उसका कान पकड लिया, "बोल, जल्दी से बोल कान निकालकर हाथ म दे दगी तेरा !'

'वह पूछ रहा था, आज अपने खेत मे कौन कौन रहेगा ?' पीठ से मुह मचकाडता रुघला बोला।

'तूने क्या बताया ?"

बताया कि तू अकेली रहेगी

मर, जाकर झापडे के आगे बैठ, कागले (कौवे) घडा मे चोच दे रहे होंगे।" टिकुडी न रुघले का कान इत्ती देर बाद छोडा और फिर फावडा उठाकर खाई मे कूद गइ 'मरी के ! आसू के खेत के बीच नजर आते झोपड पर उसन नजर डाली और फावडा चलाने लगी।

खाई पूरी होने म जरा सी कसर समझो। टिकुडी के बापू को अचानक मादगी न न पकडा होता तो यह काम उन्ही को करना होता। वे दो दिन पहले घर गए और वही रह गए। फिर माँ भी उनकी टहल

करने चली गयी। खेत म कांधे कांधे ऊंची बाजरी खडी थी। मोठ इत्ते घेर घुमेर कि पैर धरे की ठौर नही। 'टागरा से खेत का जापता करना जरूरी है ' टिकुडी ने सयाने किसान की तरह सोचा और आप ही आप फावडा उठा लिया। फिर मन में यह ललक उतरती गयी कि बापू को पता लगेगा तो कित्ती बडाई हागी—जबर भई टिकुडी खेत की इत्ती लम्बी सीव पर अकेली ने खाई द दी!

टिकुडी का खेत म बमते पूरा महीना बीत गया है। मां बापू दूजे-तीजे दिन घर बहीर होत हो तो उसकी बला स उसका मन तो इस मोठ-बाजरी म रम गया लगता है। हां, रुघला उसके पास ही रहता है। रहे तो रहे, न रहे तो भी टिकुडी को परवाह नही।

"टिकुडी! अब एक दिन घर जा आ। देख, तरे डील पर कित्ता मैल जम गया है। चोखी तरह नहा धो आ, भलीमाणस!" जाते जात मां उसे समझाती गयी थी।

"सुण मां, तरी टिकुडी तो खेत से दाना-दाना चुगकर डेरे उठाने के बाद ही घर जाएगी।" दूर सरकती मां को मन ही मन यह सदेश दकर टिकुडी ने लहग के पांयचे टाग लिय थे और घेर घुमेर मोठ क पौधा तले उगती अनचाही घास नोचने चली गयी थी।

और यह रुघला आज सुबह से रट लगाए है कि सांझ पडे वह भी आज काके के साथ घर जाएगा।" जाए तो जा मर मुझे क्या अकली का कोई खान आएगा। हां, बापू से इतना अवस कह दना कि टिकुडी ने खाई पूरी दे दी है।" टिकुडी ने एक बार बोलकर, और बीस बार अपन-अपने म बडबडाकर रुघले को यह बताड दे डाली थी आखिर अपने खत मे उसे डर किस बात का!

रुघला आसू के खेत नही गया, तब तक कोई बात न थी, पर अब! रुघला के साथ अपने ही अचीते मे किया हुआ कठोर बताव खुद टिकुडी के आगे पहेली बनता जा रहा था। बात तो फक्त इत्ती ही है न कि यह मरा रुघला ठौर ठौर कह आया है कि टिकुडी आज रात अकेली ही खेत म रहेगी। झुझलाहट मे और नही तो उसने अपना जार फावडे पर उतारा। बची हुई दूरी को झपट झपटकर खाई पूरी की और झापडे

पहुँच गयी। गए बरस इन्दरदेव का ऐसा काप रहा कि छीट ही नहा पडी। किसी का खेत म बनने की नौबत ही नही आयी। पर उससे पहल और उससे भी पहले भी तो टिकुडी खेत म रहती थी। तब ऐसा कभी नहीं हुआ। टिकुडी अपने चेत पर जोर डालती जा रही थी। यह यह तो बस इसी बरस शुरू हुआ है। पास पडोस के खेतो स कोई हेमा तो कोई पेमला और यह मरा आसू उस अकली देखकर एसे आते हैं जसे गुड की भेली क पास मकोडे!

'टिकुडी, मेरी दियासलाई भीग गयी दो तीलियाँ तो दे जरा।" कहता कहता हेमा उस दिन झोपडे म आ धमका था। टिकुडी अपनी और रुघले की रोटी पा रही थी। फिर वह बिना मनवार के ही चूल्हे के सामन बैठ गया।

"दियासलाई मेरे पास नही है ले जाना है तो वास्तै (आग) ले जा' टिकुडी ने बेमन स लाहे की कुडछी चूल्हे मे डाली और खीरे भरकर हेमा के सामने कर दिए।

'खीरो का क्या करू? ऐसे खीरे तो मेरे म तुझे देख देखकर ही सुलगने लगते हैं तू तो थोडा सा पानी दे दे मुझे!" हेमा गोल मटोल समझाइस करता सा बोला।

टिकुडी अपनी समझ मुताबिक तो समझ ही गयी। और कुछ नही सूझा, तो वही बैठे बठे आवाज लगाई, "रुघला ऊ देख तो, काका अपने खेत मे क्या कर रहे हैं?"

हेमा उठ खडा हुआ। टिकुडी अपनी अक्ल आप ही आप सराहने लगी। तभी आवाज सुनकर रुघला आ पहुँचा, 'तूने हेता दिया, क्या कह रही थी?"

"कुछ नही, तू कहा हाडता फिर रहा था?"

"टिकुडी, तू हर वक्त मुझे फटकारती क्यो है? मैं बापू से कहूँगा कि तेरे साथ अकेला नही छोडें मुझे।' रुघला रुआसा हो गया और अपना जाँघिया सँभालता झोपडे से बाहर निकल गया।

ढलते ढलते सूरज किसी कुकुम से भरे जडे थाल सरीखा हो गया और फिर जसे हाथ से छूटकर धोरे के पीछे गिर पडा। थाल भरी कुकुम

बिखर गयी। बाजरी के मिट्टे जो पहले साफ दीख रहे थे, अब फकत अपनी सरसराहट मे मौजूदगी जता रहे थे। एक-दो, एक दो करते करते आसमान तारो मे लबालूम हो गया। रात अंधेरी थी, सो उजास मे न दीखने वाले तारे भी अपना रौब जता रहे थे। तब भी तारो का उजास ही कोई उजास होता है! टिकुडी को लगा कि वह आज निर्भय नही। पर उसके आगे यह भी साफ नही था कि उसे डर किस बात का है? खडे खेत मे डागर घुस जाएँ, इससे बडा तो कोई खटका ही नही होता। डाँगरो से अपने खेत का पूरा जापता तो उसने खुद आज ही कर डाला फिर!

"नीद नही आती तो राम-राम कर!" टिकुडी को अचानक ही दादी की बातो मे से यह एक बात याद आयी। दादी जीती थी तो टिकुडी को अपने पास ही सुलाती थी। टिकुडी को देर तक जागते देखकर यह रामबाण नुस्खा बतलाती। टिकुडी ने बरसो बाद आज फिर आजमा डाला इसे। सचमुच थोडी देर मे ही अपनी आखो मे नीद को घेरे डालते पाया उसने।

टिकुडी की नीद का धडा पका ही नही कि ठोकर लगी जैसे, खेत की सीव की तरफ से आती जूतियो की चर-चू कानो से होकर हिये मे उतर गयी। एक तरेर-सी चल पडी उसके अन्दर। हफ करती उठकर माचे पर बैठ गयी। चौफेर नजर पसारी। अँधेरा और सुनसान। आसमान मे अनगिनत तारे पर जमी पर फकत दो ही चिनगारिया उसे दिखाई पडी, जो हिलती डुलती उसके माँचे की तरफ बढ रही थी।

अब देर करने की गरज कहाँ! टिकुडी माँचे से उतरी और झोपडे मे घुस गयी। गाढ अधेरे मे भी उसे इस रुत मे सदैव लगा रहने वाला साँप बिच्छुओ का खटका नही हुआ। इसी झोपडे मे चिमनी के भर उजास मे ही बिच्छू ने रुघले को डक मारकर अपनी जात बता दी थी पर टिकुडी ने झोपडे मे अपनी ठाई रखी जेई के लिए हाथ डाला तो झिझक नही हुई। उसके मन के उस अनजाने और अनदखे डर से बडे थोडे ही है ये साँप बिच्छू!

झोपडे से बाहर निकलकर टिकुडी की आँख सीव के तरफ फट पडी। उसकी अक्ल का घोडा दौडने लगा, "मरो ने पास आते आते बीडियाँ

बुझा दी है यह पता नहीं कि यहाँ तुम्हारी माँ राड जेई लिए खड़ी है "

"माचे पर सायी होगी !" छायायें अब ऐन पास आ गयी थीं और टिकुडी के कान इतने सजग थे कि उनकी फुसफुसाहट भी भरपूर सुनाई दे गयी।

"सोयी कहाँ हूँ, जाग रही हूँ तुम सबका भाता लिए बैठी हूँ न !" टिकुडी जितना अन्दर से डरी हुई थी उतनी ही बाहर से गरजकर बोली।

"टिकुडी " इस अचीती मुठभेड से भौंचक आसू आग आया।

'मेरे हाथ में जेई है, ध्यान रखना। नजीक आए तो जाशी की माहरत पूछने नहीं जाऊँगी।" टिकुडी ने आवाज की दिशा में जेई का मुह लहरा दिया और बेतरह गरजकर बोली।

आसू के पैर अपनी ठौर बैठ गए जैसे। टिकुडी ने उसके पीछे गडमड होती छायाओं को भी पहचान लिया। वही दोनों थे—हेमा और पेमला।

"किस कमरे से आए हो सब ?'

'वा, वो हा, रघला है न तेरा भाई मैं तुमसे कहने आया हूँ कि वह मुझसे माग मागकर बीडिया पीता है।" आसू ने ही माचा सँभाला।

'तो ?"

'अब मैं उसे नहीं दूगा।' आसू ने दो पैर आगे रखे और मिठास घोलता बोला, "टिकुडी, तेरे साथ थोडी देर हथाई करने आए थे हम सब, तू अकेली है न !

'तुम तीनों अपना रास्ता ले लो " टिकुडी आगे कुछ बोलती कि अचानक ही उसका जेई थामा हाथ आसू की चौडी हथेली की गिरफ्त में आ गया। उसने मरोड लेकर छूटने की चेष्टा की तो गुजायश पाकर हेमा और पेमला भी पहुँच चुके थे।

'बैरियो मैं तुम तीनों को कुछ नहीं दूगी " कहकर टिकुडी पूरे जोर से नीचे झुकी और भरपूर ताकत झोंककर ऊपर को झटका खाया, तो उसके दोनों हाथ उनसे छूट गए, 'पेट बींध दूगी " उसने पलटकर

जेई का मुँह सीधा कर अँधाधुंध चलाना शुरू कर दिया।

टिकुडी न पाया कि सामने जैसे कोई है ही नही। वह जब जेई चला रही थी, तभी तीनो छायाओ ने अपन-अपने माथे भिडाए और पलटकर सीव की तरफ सरकने लगी थी।

"बात तुम मुर्दों की मेरे बापू को आने दो " टिकुडी अँधेरे मे अनुमान से उनके पीछे नजरें दौडा रही थी और उनकी जूतिया की चर-चू को ही गालियाँ सुना रही थी। आखिर हाँफकर माँचे पर बैठ गयी। जेई को माँचे की ईस से टिकाकर सास लेने लगी। सास सँभली तो बतरह गरमी लगन लगी। लगा कि परसेव से नहा गयी है। यू ही बैठे बैठे उसकी रुलाई फूट पडी अपनी दोनो हथेलिया से अपनी दाना आखें ढाप ली टिकुडी ने।

तारे अपनी चाल चलते गए, रात अपनी चाल। टिकुडी की आखा मे फिर नींद नही लौटी। वह कुछ देर माँचे पर पसरे रहती, फिर उठकर बठ जाती। उसकी इस उठ बैठ मे ही पूरब की तरफ से सूरज ने अपना मुँह निकाल लिया। धार, झोपडे, खेत-बाड, घडे और आसपास की हर चीज उजास मे धीमे धीमे चरूड होने लगी और रोही की चिडकलियो ने चोच खोल खोलकर उजास का जस गाना शुरू किया। टिकुडी को अब जाकर पूरा भरोसा हुआ। उसकी नजर दूर धारा के बीच से आते कच्च रास्ते पर बँधकर रह गयी। पहली, दूसरी या पता नही किस गाडी म घर स कोई जरूर आ जाएगा। उसन मन ही मन बापूजी की सिवरण की, कि आज बापू ही ठीक होकर खेत आ जाएँ।

टिकुडी पूरी रात मन ही मन अपना यह निश्चय दोहराती रही थी कि इन मरो की शिकायत आज वह बापू के आगे जरूर करेगी। य यू ही नही मानेंगे। बापू की एक दकाल पर ही इनका पित पाणी थिर हो जाएगा। गाडियाँ आन लगी थी। एक, दो पाँच, सात पता नही कितनी गाडियाँ गुजरी कि अचानक उसे अपनी गाडी आती दीख पडी। और भी भली बात यह थी कि गाडी का बापू चला रहे थ। जान क्या हुआ कि बापू का चहरा जैस ही पास आता जान पडा, टिकुडी की छाती दहकन लगी। वह यह क्या कहेगी बापू स? लगा जैस खुद अपन से ही कोई

बजा बात हो गयी है। यही कहेगी कि आसू, हेमा और पेमला न मिलकर तेरे साथ क्या किया तेरे साथ।

टिकुडी का लगा कि उसे लाज आ रही है। लाज और टिकुडी का! एसी टिकुडी का जो खेत म मर्दो से बढकर मेहनत कर और गरज पड ता लव चौडे खेत का अपने ही बूते पराट ले। बापू क्या सोचेंगे? पर टिकुडी का अपन आग आज पहली बार हार माननी पडी कि उस बापू क आग यह कहत लाज आन स नही रहेगी। नही, वह कुछ नही कह सकेगी। टिकुडी न वही खडे खडे अपन पूरे शरीर का जैसे छिपकर निहारा और बुरी तरह लजा गयी। यह, यह क्या हो गया उसे।

यह तो खुद उसन कभी मीट जाडकर बात नही की, नही तो नहा तो क्या? एक अजब मीठी मीठी झुरझुरी दौडती जान पडी टिकुडी को अपने शरीर म। उस दिन पमला आया था न! कहने लगा, 'टिकुडी, आज हरिराम बाव के परसाद चढाया था। ले, तर लिए इत्ती सारी परसादी लाया हूँ।' पर टिकुडी न कहा ली थी परसादी! मन म बाव के दोष का डर लगा पर परसादी के पडो पर टिकुडी का मन क्या नहा ललचाया? रुघले न बडे चाव स पडे खाए टिकुडी अबोल रीस म भरकर दखती रही फकत।

गाडी कब खेत म पहुची और कब झोपडे के आगे जाकर ठहरी, टिकुडी को इस सुन म कुछ पता नही लगा। बल न थमत ही जोर स गदन हिलाई तो गले म बधा टणकारा टण-टण बजने लगा।

टिकु बटा, खडी ही रहेगी या गाडी का सरजाम भी उतारेगी?" बापू न उस पुकारकर पूछा।

तभी उसन गौर किया उधर। बापू के साथ ही गाडी से उतरकर यह कौन खडा हो गया? टिकुडी न क्षण एक को छोटी अवस्था क उस शहरी बापू का दखा और गाडी म रखी आडी उठाने आग बढ गयी। न आज वह बापू को दखकर सदैव की तरह अणमाप हुलस से दौडी और न ही उतावले बोला म मन म किए अपन कीरत का बखान कर सकी। बस, सयानी सी आया और आडा उतारकर कापडे म रख आयी। फिर पानी क घडे बापू उतारकर गजडा तल छाया म रखन लगे। टिकुडी न तो यह तक नहीं

पूछा कि बापू आज किसे साथ ले आए ह ?

"यह अपने मोहन का भायला है शहर से आया है।" बापू ने उस शहरी बाबू क कधे पर हाथ रखकर बताया, "खेत देखन के चाव से आया है।" यह कहते ही जान क्यो बापू को हँसी आ गयी।

टिकुडी न माचा लाकर झापडे की एक तरफ पडती छाया म बिछा दिया। शहरी बाबू न जैसे आसपास कुछ देखा ही नही, अपने म ही लीन-सा माचे पर बैठ गया। टिकुडी उसके कस काठे कपडे जसे छिप छिपकर देख रही थी।

रात की बात जसे उसके चित्त से सरक चुकी थी।

तीन दिन बीत।

मोहन का वह शहरी भायला अभी भी खेत म था। वह दिन-भर छाया खोजता अपना माचा एक ठौर से दूजी ठौर घीसता रहता और कच्चे मतीर फोडता रहता। उसकी हर बात को टिकुडी अचम्भे म भर भरकर दखती रहती, पर बोलती कुछ नही। उसका ट्रांजिस्टर, जो टिकुडी को अपन गाँव के नाई की रछानी (हजामत पेटी) जैसा लगा ही, उसक लिए बोल-बतल का साधन था जैस। दिन भर उसकी सुई चलाता रहता।

"तुझे मतीरे क कच्चे पक्के का पता नही लगता, बेटा तू टिकुडी को कहकर मतीरा मगवा लिया कर।' बापू ने उसे पहले ही दिन समझा इस कर दी थी, पर वह था कि टिकुडी को जैस कुछ समझता ही नही। वह पास खडी होती तो भी कच्चा मतीरा बेल स झटक लेता और अनाडी-पन से उसे फोडकर कच्ची सफेद गिरी दखता और फेंक देता।

टिकुडी को रीस आती, 'कहाँ से आया है यह डफोल कही का! मोहन के साथ शहर म पढता है, मतीरा परखने का तो शऊर ही नही।" मन करता कि जैस ही बल म हाथ डाले, लपककर पकड ले और कह डाले "लाडेसर, लडडू नही मतीर हैं बहुत तपन म निपजते हैं खबर दार, जो कच्चे तोडकर खराब किए तो !" कह कहाँ पायी वह ऐसा!

बापू निनाण म जुट गए। टिकुडी भी पांयच टाँग, कम्मी थामे उनके साथ लगती, पर रोटी पानी तो झापडे म आना ही पडता। तब वह दाखनी

अपने मोहन के भायले को। इसको तो बडा गुमान है वह सोचकर रह जाती। एक वे तीनो हैं जो उससे दो बाल बोलने को नित नय बहाने रचते फिरते हैं और एक यह कि भीट ही नही जोडता! टिकुडी के अपन खेत म आर उसी से ऐसी बेरुखी। रीसभरे अबोलपन से बेंटकर रह जाती टिकुडी। अवस साचती कि बापू से कहकर इसे खेत से निकलवा क्या नही देती!

'रोटी जीम ले।" यह फकत सोचना था। कहने मे रोटी पोकर यही कहा टिकुडी ने।

वह करवट लिए माचे पर पडा था। उसकी रछानी बज रही थी। उसन शायद टिकुडी की आवाज सुनी ही नही। टिकुडी की रीस बिसवा-भर ऊपर निकल आयी। झपटकर आगे बढी और रछानी का काई बटन फेर दिया।

"इत्ती बेर हो गइ तुझे बुलाते!" उसके पलटकर दखते ही टिकुडा बोली पर आग के बोल उसक मुह में ही ठहर गए—बहरा है क्या?

माहन के भायल न मोहन की इस गँवार बहन को पहले-पहल दखा जैसे और कुछ दर ताककर हँस पडा। टिकुडी को भी हँसी आ गयी और फिर लाज!

फुर्ती से झापडे की तरफ पलट गयी टिकुडी।

"तू मोहन का भायला है?' रोटी साग और दही परोसकर टिकुडी ने थाली उसक आग सरकाई और पूछ लिया।

हाँ तू उसकी बहन है ?' उसन रोटी निगलते हुए पूछा।

यह भी कोई पूछने की बात है! टिकुडी को बडा अटपटा लगा उसका यह पूछना। क्यो क्या कमर है उसम! क्यों नही हो सकती वह माहन की बहन? यह तो इसीलिए पूछ रहा है न कि माहन शहर में रहकर शहरिया जैसा दीखने लगा है और वह टिकुडी का मन हुआ कि इसी वक्त दौडकर सन क कुड में घिर पडे पानी म अपनी छवि निहारे जाकर। आनू तो कहता है कि टिकुडी सी मावणी इस गाँव तो क्या पासवाले गाव म भी कोई बेटी-बानणी नहा। कहा वह झूठ तो नही बालता।

तू यहाँ क्या आया?" अचानक ही टिकुडी न यह अचीता सवाल

कर डाला उससे।

मोहन के भायले का कौर उठाता हाथ थम गया। कडी मीट से उसने टिकुडी के सामने देखा और जैसे सोचकर बोला, "मतीरे खाने, खेत दखने और किसलिए।"

'तेरे शहर मे मतीरे नही मिलते ? लारिया तो भर-भरकर ले जाते हैं शहर वाले।" टिकुडी का हौसला अब भरपूर था।

'मिलते हैं, पर मुझे खेत भी देखना था मोहन ने कहा कि खेत मे भूख बहुत खुलकर लगती है खेत की हवा से आदमी निरोग हो जाता है "

"तू और कित्ते दिन रहेगा ?" टिकुडी को उसका हर बोल बेमतलब और बेमानी लगने लगा उसने उसके खेत-महातम को बीच मे ही रोक कर पूछ लिया।

'क्यो ? मेरी मर्जी, तुझे इससे क्या ?' उसने अजीब मिठास मे हँस कर कहा, जो टिकुडी का कुछ भला सा लगा।

"सच्ची बात तू क्या फकत खेत देखने ही आया है ?"

'तो और यहाँ है ही क्या ?" कहकर हाथ धो लिए मोहन के भायले ने।

टिकुडी पर जमे घडा भर ठडा पानी आ पडा। मोहन ने शहर मे कमे-कमे सूमडे (दभी) भायले बना रखे है। दो बात मीठे बोलने क्या होते हैं, जैसे कुछ जानता ही नही। खेत मे क्या फकत खेत ही होता है— मिनख नही होते। मिनख न हो, तो खेत ही क्यो हो डागरे तो हल जोतने से रहे। अब जीमना मुझमे बापू ही परोसेगा अपने लाडले बट ने लाडले भायले को। टिकुडी ने पक्की विचार ली।

बापू ने गाडी जोत ली तो उसने भी अपना थैला, जिसमे वह अपनी रछानी और पूर पल्ले लाया था, गले मे लटका लिया। टिकुडी ने उसे देख कर ही पता लगा लिया था कि आज यह मोहन का भायला अपने शहर लौटने वाला है। जाए, उसकी बला से। कच्चे मतीरे तो नाम नही होते और।

सवेरे ही काका की गाडी में घर से माँ आ गयी थी। साथ ही रुधना

नी। बापू ने गाडी लाद ली, तो मोहन के भायले का लाड से पूछा, "मतीरों की और मन मे तो नही रह गयी ?"

"एकदम ही नही पट भर गया।" कहकर उसने अपने पट पर हाथ फेरा। उसके इस भोले या बावरेपन पर पहले बापू और फिर रुघला दोनो हँसे। टिकुडी को फक्त झुझलाहट हुई डफाल कही का। मतीर कोई पेट भरने की चीज है। कोरा पानी ही तो होना है शरीर म गया और पेशाब मे बहा पट म रहा ही क्या।

बापू ने बलकी रास पकडी और उसने अपने गले को अपनी आदतमुजब हिलाया। टणक-टणक की आवाज म टणकोरा बज उठा। रास खिचते ही वह सिर धुनता रास्ते की तरफ बढने लगा। मोहन का भायला अपना थला लटकाए गाडी के पीछे पीछे चला। आग ही आग बापू, पीछे सिर धुनता बैल और गाडी और गाडी के पीछे थला लटकाए कसे काठे कपडो म मोहन का भायला टिकुडी अपलक देख रही थी उन्हे जाते। अचीते ही एक अणमाप ललक उभरकर आयी टिकुडी के मन म—क्या मोहन का भायला एक बार मुडकर नही देखेगा उसकी ओर ? हो चाहे सूमटा ही, पर है कसा गोर निठोर ममोलिए सा फूटरा।

उसकी दूर सरकती पीठ पर थिर हो गयी टिकुडी की मीट सुन मे ही उसने अपना एक हाथ पास खडे रुघले के कधे पर रख दिया। खेत की सीव से गाडी निकलने तक उम्मीद नही छूटी उससे वह एक बार मुडकर अवस देखेगा। आखिर निष्फल गयी टिकुडी की उम्मीद। सीव से मुडते ही सब कुछ अलोप हो गया—बापू, बैलगाडी और मोहन का भायला।

टिकुडी की जैसे सपने म आँख खुल गयी। वह छपाक से मुडी और रुघले के आगे गाडे टेककर बैठी गोर बडी मनवार से बोली "रुघला तू मेरा स्याणा बीरा है न मेरा एक काम कर द, दौडकर बापू की गाडी के पीछे जा और उस मोहन के भायले से पूछकर आ कि उसका नाम क्या है ?

उसका ? रुघले न गाडी की दिशा म हाथ कर भोलापन स पूछा। अरे, हा ! उसी मोहन के भायले का !"

और तभी माँ झोपडे से निकलकर बाहर आयी। सुन म टिकुडी भूल ही गयी कि वह झोपडे के ऐन आगे ही तो खडी है और अभी-अभी माँ अन्दर गयी है।

"टिकुडी, किसका नाम पूछने भेज रही है, री ?" मा ने फकत इत्ता ही पूछा उससे।

"माँ मां, वो हैं न तीनो " टिकुडी ने खडी होकर पूरा हाथ आसू के झोपडे की तरफ पसार दिया और उसकी आखो मे परनाला छूट गया जैसे, "वो तीनो मुझे अकेली को देखकर तग करते है तुम मुझे खेत मे अकेला छोडकर घर मत जाया करो ।'

रघला इस बीच बापू की गाडी के पीछे दौड रहा था।

बाड़े का कुत्ता

[एक प्रतीक-कथा]

छुटपन से ही एक कुत्ता मेरे साथ है—उपस्थित और अनुपस्थित—दोनों सूरतों में। अपनी उपस्थिति में यह सानलिया रोया और मुनवाँ काया वाला कुत्ता आँखें भरकर मुझे देखता रहता है। इन भोली और निश्छल आँखों में मुझे अपार कृतज्ञता भावना के दर्शन होते हैं। क्या एक कुत्ता सचमुच मुझे कृतज्ञता ज्ञापित कर रहा है?

बात बहुत पुरानी है। तब मेरा सब कुछ पिताजी पर निर्भर था। उनका तबादला अपने देश के औसत धूसर और रेगिस्तानी कस्बे में हो गया था। वहाँ कुछ दिन वे अकेले रहे। फिर हम, माँ और मुझे साथ ले गये। कस्बा नवधनाढ्य सेठों से भरा था—दब्बू, शांत और निरुत्साही किस्म के कमाऊ लोग, जिन्होंने दुनिया से आँखें मूदकर अपनी हवेलियों में लग दौलत के ढेर पर समाधियाँ लगाने में ही अपना निर्वाण खोज रखा था।

पिताजी कस्बे की एकमात्र बैंक के मैनेजर थे। इन नये और अनपढ़ अमीरों में उनका खासा रोब था। हम वहाँ अपना भाड़े का घर देखकर भौचक रह गये। किसी सेठ ने अपनी नयी-नकोर हवेली ही पिताजी को सौंप दी थी। इस हवेली के ठीक सामने एक सूना बाड़ा था—दसफुटी जोधपुरी पट्टियों से घिरा विस्तृत बाड़ा। यह किसी भावी हवेली की भाव भूमि और आधार भूमि, दोनों था। बाड़े में अत्यंत सघनता से उगे हुए कीकर के अनगिनत पेड़ थे। कीकरों तले साँपों के निर्विघ्न विचरण की बात

सुविदित थी। हमे रात-बेरात पट्टियो के पास से गुजरते सँभलकर चलने की हिदायत थी। लगभग एक-एक फुट चौडी खडी पट्टियो के बीच की फाँको मे से, साँप सैर करने आम रास्ते पर निकलते रहते थे। पिताजी ने हरेक को अपनी अलहदा टॉच ला दी थी। कोई आकर बताता कि साप निकला, तो मैं अपनी टॉच लेकर उसे देखने भागता। मुझ शहराती बच्चे के लिए साँप को अपनी मौज मे स्वच्छंद विचरण करते देखना बडा रोमांचक अनुभव होता। काले, भूरे, चितकबरे, छोटे, बडे विषैले और विषहीन सभी भाँति के साप वहाँ मिलते थे।

मेरे मासूम कुत्ते की दास्ता, इसी बाडे से शुरू हुई थी।

याद नही कि हम बाडे के सामने रहते कितने दिन बीते कि एक सवेरे पाँच सात मजदूर कुल्हाडियाँ लेकर आए और बाडे मे खडे कीकरो का सफाया करने मे जुट गये। बाद मे माँ ने बताया कि ये कीकर पिछली गली की एक गरीब बुढिया ने बाडा मालिक की अनुमति लेकर अपने लिए कटवाये हैं। वह इन्हे सुखाकर सालभर का इधन जुटाएगी। सेठो का बाडा मुफ्त मे साफ हो गया, बुढिया का इधन मिल गया। ऐसी पारस्परिक सद्भावना की कस्बे के लोगो मे भारी प्रचुरता थी जिसके तुआ पर आज चाहू, तो घटो सोच सकता हूँ। शाम होते होते मजदूर कीकरो का कटान आम कर, उनकी ढेरी पट्टियो के बाहर लगाकर चले गये। बाडा खुले मैदान की शक्ल मे सामने था—सिवाय उसके बीच मे एकाध ईंट पत्थर के ढेर, चिकनी मिट्टी के जमे हुए छोटे बडे ढहो और कुछ आक के पौधो के। बाडे के दक्षिण मे एक अधनगा सा बावलिये का पेड भी था, जो अब समूचे बाडे मे छाया और शीतलता का एकमात्र जरिया था।

2

उस बाडे मे कोई द्वार न था। मजदूर पट्टिया उखाडकर घुसे थे, जिन्हे उन्होने फिर से गाडकर बाडा बन्द कर दिया था। ऐसा लगता है कि बाडे मे घिरी पृथ्वी का टुकडा, अपने मालिको जैसे ही बेसुध और आत्मलीन समाधि लगाये हुए था। इसे छेडने, सँभालने, देखने या खोलने कोई नही आता था। इसके स्वामित्व का पट्टा मालिको की तिजोरी मे

बंद पड़ा होगा और उनके दिलो दिमाग में भावी हवेली के नक्शे कुलबुलाते रहे होंगे। न जाने कब से इस बाड़े के भाग्य में यही बदा था?

मौसम बदल चुका था। शायद नवम्बर का महीना था। यही दिन होते हैं जब कुत्ता का कामावेग अपने चरम पर दिखाई पड़ता है। गलियों में विपरीत मुखी स्तंभित मुद्रा में मैथुनरत कुत्ते-कुत्ती बच्चों में कौतूहल जगाते जहाँ तहाँ मिल जाते थे। इसी का दूसरा पहलू था कि गली गली में कुतियों के जापे हो रहे थे। हर गली में एकाध कुतिया घूरों में केऊँ-केऊँ करते अपने नवजातों के साथ नजर आती। कुछ बड़े होते ही ये पिल्ले बच्चों की गोदियों में दिखाई पड़ते। जाड़े की गुनगुनी धूप में पिल्लों पर प्यार उँडेलते, उन्हें दुलारते पुचकारते या उनकी हिफाजत की फिक्र में घुलते बच्चों के दृश्य बहुत आम थे। हिफाजत की फिक्र इसलिए कि दूसरी गली का कोई कुत्ता, किसी निर्दोष पिल्ले की गर्दन फफोड़ने का हरदम ताक में होता था और अक्सर इस तरह पुरानी रंजिश निकालने में कुत्तों की सफलता से बच्चे वाकिफ थे। पिल्लों की जन्मदर ऊँची होती, पर यों बढ़ी हुई मृत्युदर से संतुलन बना रहता।

एक दिन मैं बाड़े के करीब से निकल रहा था कि पट्टियों के भीतर से एक बारीक आवाज कानों में पड़ी। मैं रुक गया और दो पट्टियों के बीच फाँक पर आँख लगाकर बाड़े के भीतर देखने लगा। बहुत चेष्टापूर्वक देखने पर वह दिखाई पड़ा—ईंटों के पास कुनमुनाता हुआ नन्हा सा पिल्ला। शायद हिफाजत के लिए किसी चाहने वाले बच्चे ने उसे बाड़े में छोड़ दिया था। पट्टियों के बीच की फाँकें इतनी बड़ी न थीं कि वह इनमें से बाहर आ जाता। उस वक्त मैं अपनी राह चला गया, पर बाद में पट्टियों के पास जाकर बाड़े में ताक झाँक करने से अपने को कैसे रोक लेता! बचपन ऐसा ही होता है छोटी छोटी बातों में मशगूल और उत्तेजनाओं से लबरेज। शायद हरेक आदमी के भीतर एकाध कुत्ते का बहाना या बहाने का कुत्ता मौजूद होता है जिसके सहारे वह जब चाहे अपने बचपन में लौट सके। मेरे पास तो सचमुच का जीता-जागता कुत्ता है।

मुझे याद है कि मैंने अपने साथियों के साथ मिलकर पिल्ले को निकालने

में। कितनी ही युक्तियाँ ढूँढी। उसे भीतर छोड़ना जितना आसान था, निकालना उतना ही मुश्किल लग रहा था। मेरी मित्र मण्डली में बारह बरस से बड़ी उम्र का कोई न था। कोई साहस नहीं कर पा रहा था कि बिना द्वार के बाड़े में कूदकर पिल्ले को निकाल लाए। पट्टियाँ दस दस फुट खड़ी थीं, हमारे कद पाँच फुट के भीतर-भीतर थे। एक रास्ता पट्टी उखाड़ने का था, जिसमें दो बाधाएँ थीं। एक तो पट्टियाँ बहुत मजबूती से गड़ी थीं, दूसरे सेठों की डाँट फटकार का खतरा था। यह शुद्ध रूप से हम बच्चों की उलझन थी, किसी बड़े का जरा भी फुर्सत न थी। ले देकर मैंने माँ से कहा, तो उसने सूखी सी सहानुभूति जताकर हाथ झड़का लिए।

आखिर हमने स्वीकार लिया कि पिल्ला जल्दी बाहर नहीं आ सकेगा। अब सवाल उसके खाने पीने का रह गया। एक पट्टी ऊपर से खण्डित थी जिसमें छोर पर फाँक ज्यादा थी। इसमें से एक एल्यूमीनियम का पुराना तसला कहीं से लाकर हमने भीतर छोड़ दिया। पिल्ला उसे उलटा देता, तो हम लम्बी छड़ी से सीधा कर देते। रोटी पट्टियों के ऊपर से फेंकते और पानी इस तसले में उँडेल देते। यह हम सबका राजमर्रा का शगल हो गया। बाड़े में बासी रोटियाँ यहाँ वहाँ पड़ी रहतीं, क्योंकि हममें से हरेक इस शाही पिल्ले के पालन पोषण का लेकर उत्साहितरेक में था। इसी अतिरेक में बड़े बहस मुबाहिसे के बाद उसका नामकरण हुआ—जैकी! बाड़े में पलते जकी से बच्चों के सिवाय किसी का लेना देना न था। यहाँ तक कि किसी कुतिया ने भी बाड़े के पास आकर, अपने हावभाव से जकी की माँ होने का दावा प्रस्तुत नहीं किया था।

3

दिन पर दिन बीतने लगे। सचमुच जकी पिल्ले को बाड़े में कोई खतरा न था। सर्दी में साँप तक बिलों में जा दुबके थे। जैकी का लकर जनमा मेरी मण्डली का उत्साह भी मंदा पड़ने लगा। कुछ ने उसे रोटी डालना भी छोड़ दिया था। बचपन के कौतुकों में दीर्घजीविता का सर्वथा अभाव रहता है, परन्तु मैं इस मान्यता के विपरीत चल रहा था। मुझे पक्की

आशा थी कि जैकी कोई रास्ता ढूढकर, बाडे के घेरे मे बाहर पदार्पण जरूर करेगा। इसी आशा को फलीभूत देखने की ललक लेकर मैं रोजाना सवेरे उसे रोटी पानी देने जाता। मेरी कामना रहती कि आज वह बाडे में न मिले। वह था कि मेरी पदचाप के साथ साथ लपककर पट्टियों के पास चला आता। मैं फाक मे से देखता, तो वह मुझे केऊँ केऊँ करता, दुम हिलाता दिखाई पडता। याद करते हुए अचम्भा होता है कि अपने नाम के प्रति सजग होते इस जैकी नामक पिल्ले को लेकर मेरी भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ कितनी वैविध्यपूर्ण थी? कभी मुझे जैकी की शक्ल बिना मा बाप के उस दुखी बच्चे सी लगती जिसका वर्णन मैंने कहानियो मे सुना था। कई बार मुझे वह रोया हुआ या रोता नजर आता। पता नही यह सच था या मेरा अनुसधान मात्र कि जैकी की आखो की जडो मे मुझे अक्सर एकाध बूद आसू मचलता दिखाई देता। मुझे जैकी को लेकर करुणा के दौर मे पटक पर तु जब वह लटूरे करता, कूदता फादता और खुशी जाहिर करता तो उसका बाडे मे घिरा होना मुझे बुरी तरह साल जाता। मुझे उसमे बाडे से निकलने की अनिच्छा या असामर्थ्य देखकर झुझलाहट होती और अमूमन सा गुस्सा आने लगता।

होते होते यह हुआ कि एक पल भी मै उसे भुलाकर नही बैठ पाता था। एक दो बार उसे बाहर निकालने के एकल अभियान भी मैंने चलाये। पटिटयाँ हिलाने की चेष्टाए की और सोचा कि जड से खोदकर कोई पट्टी छिलकर उखाड डालू। ऐसा नही कर पाया, तो सोचा कि किसी बडे से कोई सलाह-मशविरा कर लू—कुछ करू जिससे जैकी बाडे से छुटकारा पा सके। पटिटयो के बाहर मैं था, भीतर जैकी—बाडे के घिरे हुए विस्तार मे खाता पीता हँसता, सूनता, रोता, हसता और दिन दिन बडा होता हुआ। उसकी दूसरी मौजूदगी मेरे भीतर थी जो मुझे पल पल, घर से बाहर निकलने को फडफडाती मालूम देती। यह फडफडाहट उसकी की थी या मेरी, कुछ पता नही लगता था।

इसी ऊहापोह मे मेरा वहाँ से जाने की घडी अचानक आ धमकी। पिताजी मेरी पढ़ाई के बहाने आये तब से इस जगह को कोस रहे थे। जनवरी आते आते उन्होने मेरा एडमीशन जयपुर के एक बडे स्कूल मे

कराकर होस्टल मे रहने का प्रबन्ध कर दिया। जैकी को बाडे से निकालने का अभियान मँझधार छोडकर मैं वहा से चला गया।

इतनी दूर पहुँचकर भी मैंने जैकी को एकदम नही भुलाया था। यह तो तब हुआ, जब मेरे प्रबल आशावाद ने उसे अनुपस्थिति मे ही बाडे से बाहर निकालकर दम लिया। मैंने मान लिया कि वह अब तक रास्ता ढूढकर जरूर बाहर चला आया होगा। ऐसा मानते ही वह एक साधारण गली के कुत्ते मे बदल गया—जिसे भुलाना मुश्किल नही होता। फिर मेरे नये माहौल मे कितनी ही नयी चीजें थी, जिन्होने उसकी याद को मुझसे धकेल बाहर करने मे मुझे चाही अनचाही मदद पहुचाई। मैंने अपनी पहली पहली चिट्ठियो मे उसका जिक्र जरूर किया, जिसके बदले मे घर से कोई समाचार नहीं मिला। आखिर जैकी बेचारा एक पिल्ला ही तो था, जिसे पिताजी जैसे सयाने लोग क्यो तूल देते?

४

मैं छोडकर होस्टल आया, तब तक जैकी को बाडे मे रहते लगभग दो महीने बीत चुके थे। दो तीन महीने होस्टल मे उसकी याद बनी रही, फिर वह मुझसे एकदम ओझल हो गया। यहा तक कि सत्र समाप्ति के बाद, छुट्टियो मे घर लौटते हुए भी उसकी याद नही कौधी। मैं स्कूल और होस्टल के ढेरो सस्मरण सँजोए घर पहुँचा—वही, उसी हवेलियो वाले कस्बे मे जहाँ पिताजी हमे ले आये थे।

मेरे पीछे पिताजी ने वह हवेली छोडकर एक मँझोला सा, घर दूसरे मुहल्ले मे ले लिया था। इस घर के सामने न बाडा था, न जैकी ही कहीं नजर आ सकता था। यहाँ पहुँचने पर उसकी याद ने भीतर हल्की सी करवट जरूर बदली थी, पर मैं ध्यान नही दे पाया था। शायद मुझे आए कोई दस-पन्द्रह दिन बीते थे कि एक दिन उधर से शब्दशरणजी आए। वे हमारे हवेली वाले घर के बायें बाजू पडोसी थे।

सवेरे का वक्त था। शब्दशरणजी पिताजी से बातें कर रहे थे। मैं पास से गुजरा, तो उन्होंने मुझे पुकार लिया। ऊँचे कद, फैले डील डौल और साँवले रग के, खिल खिल हँसने वाले शब्दशरणजी का सबसे अप्रिय

परिचय था उनका निहायत कस्बाई अध्यापक होना। पिताजी पीठ-पीछे उनके हुलिये और मूर्खता पर हँसा करते थे। इसलिए मुझे शब्दशरणजी के घर आगमन पर अचम्भा हुआ था कि मेरे पिताजी जैसे ऊँची नाक वाले सचेष्ट नव्य आदमी से वे किस मसले पर मिलने आये हैं? उन जैसे सरल और गावदी आदमी का देने के लिए मेरे पिताजी के पास कुछ नहीं था।

अहा! हमसे नहीं बोलोगे वहाँ से क्या इतनी ऊँची पढ़ाई कर आए! शब्दशरण जी के बोलने से जाना कि मेरे हास्टल जाने की उनको पूरी खबर है। कुछ ऐसे ही बेतुके वाक्य और बोलकर उन्होंने मुझे अपने घर आने का न्योता दिया। मैंने हाँ भरी, तो अचानक चहक पड़े, "और हाँ, उससे नहीं मिलोगे अपने बाड़े वाले दोस्त जैकी से?"

एक पल में समूचा बाड़ा उलट फेर मचाता मेरी याददाश्त के ऊपर तैर गया। बाड़े में मौजूद नन्हा जैकी जैसे कहीं से उछल कर बाहर निकल आया। मैं इतनी देर चुप रहा था, अब और रहना नहीं हुआ। तपाक से पूछा, 'जैकी अभी तक बाड़े में है? बाहर नहीं निकला?"

"क्या निकलेगा!" शब्दशरणजी बताने लगे, "मैं रोज उसे रोटी खिलाता हूँ, पानी पिला देता हूँ—उसे और क्या चाहिए?'

सरलता एकदम निष्प्राण सरलता से मानें तो शब्दशरणजी का कहना अस्वाभाविक नहीं लगेगा। आखिर एक कुत्ते को और क्या चाहिए? बैठे बिठाए खाना पीना और पेट खाली करने के लिए खुला मैदान, जहाँ वह सूँघ सूँघ कर इसके निमित्त अपनी मन पसन्द ठौर पा सके। इसकी जैकी के पास क्या कमी थी?

५

मैं बाड़े पहुँचा, तो अँधेरा घिर चुका था। अच्छी तरह याद है कि वह एक पूरे चाँद की रात थी। चाँद मेरे नाम से ही आसमान के एक ओर इठलाता हुआ कस्बे के राम राम पर शहद बरसा रहा था। बाड़े की लाल पटिटयाँ दूर से दीखते ही मन में हिलोरें उठने लगी थीं—जैसे कि किसी बेहद प्रिय से भेंट होने वाली हो! कहाँ छिपा होगा? पुकारने पर चला तो आयेगा? अपना नाम भूल तो नहीं गया? इसी तरह की उधेड़-बुन

करता मैं बाड़े के कोने पर जा खड़ा हुआ। वही इकसार पट्टियों का घेरा और ऊपर झाँकते दुबारा उग आए कीकरों के सिर। थोड़ी देर खड़े रहने के बाद मन में अपने पर ही खीझ सी उठी—आने के लिए गलत वक्त क्या चुना? खूब जोश में था चाँद, फिर भी उसके उजाले के भरोसे कीकरों के गुरमुट तले जैकी को ढूँढना दुष्कर था। लाख इच्छा रहते भी दिन में क्या नहीं आया? दरअसल भर दोपहर एक कुत्ते से मिलने जाने की बात पर मैं जैसे अपने आगे ही शर्मिन्दा-सा हो रहा था। इस धकेलकर चले आने में ही अँधेरा हो गया था। यह संभवतः अपने वयस्क होते जाने का आकार लेता अहसास था, जो मुझसे मेरे बचपन का बिंदास्पन धीमे धीमे हथियाता जा रहा था। यही दिन थे, जब मैं अपने क्रियाकलापों को दूसरों की आँख से भी देखना सीख रहा था।

गली के एक पहलू पर चाँद के तिरछेपन से छिटकती अंधेरे की झालर सरीखी पट्टियों की छाया पड़ रही थी। मैं इस छाया में धीमे धीमे चला तो लगा कि रेंग रहा हूँ। सताये हुए साँप जैसी अवस्था में, कि कोई सुराग मिले और मैं उसमें घुस पड़ूँ। आवाज देकर पुकारूँ—जैकी! जैकी! लेकिन जीभ में ऐंठन होने लगी कि कोई दूसरा निकल बाहर न आ जाए! किसी फालतू पूछताछ का जवाब देने की सोच कर ही सिहरन हुई। फाँक से बाड़े में देखने की व्यथता तो पहले ही समझ चुका था, फिर भी यही करने की पल पल इच्छा हो रही थी। पट्टियों की लम्बी कतार को छूकर पार करता मैं बाड़े के छोर पर पहुँचा कि उसने पुकारा—भौं भौं! बेसब्री से मैंने फाँक पर आँख धरी। कुछ सूझा नहीं, पर यह साफ हो गया कि आवाज भीतर से आई है। मैं लपककर ऊपर से खण्डित, ज्यादा चौड़ी फाँक वाली पट्टी पर पहुँचा और उचक-उचक कर आवाज की दिशा में उसे ढूँढने लगा। अचानक मेरी धड़कन गले में आ गई, पपोटों पर धड़क धड़क अनुभव करते हुए मैंने देखा उसे—कीकरों के बीच अपेक्षाकृत ऊँचे मिट्टी के ढूह पर बैठा हुआ हमारा जैकी ही भौंक रहा था। चाँद सरककर कुछ ऊपर आ गया था। चाँदनी ने जैकी और ढूह दोनों को रोशन कर दिया था। मटमैले ढूह पर उसकी मानलिया काया किसी जेवर की तरह जगमगा रही थी। जैकी, हमारा नन्हा सा पिल्ला जवान होकर मेरे

सामने था—पिल्ले की बजाय कुत्ता कहलाने का अधिकारी ! मैंने धीमे से पुचकारा भी। जैकी ने कोई ध्यान नहीं दिया। अचानक वह पंजों के बल संतुलन रखता सा ढूह से नीचे उतर कर अँधेरे में ओझल हो गया। कुछ देर मैं उसके दुबारा भौंकने पर कान दिए खड़ा रहा, फिर घर चला आया। मैं जैकी को दिन के भरे पूरे उजास में देखने की उमंग लिए सो गया।

सवेरा होते ही मैं बाड़े पहुँच गया। अब की जैकी को ढूंढना नहीं पड़ा। चौड़ी फाकवाली पट्टियों के पास जाकर देखते ही वह सामने था, एक कोने तले इत्मीनान से बैठा हुआ—ऐसे कि दुनिया में सुख की ऐसी सांस इस अकेले को छोड़ किसी के भाग्य में नहीं ! मैंने धीमे-से आवाज दी—जैकी ! वह पट्टियों से दूर न था, नाम सुनते ही कान उठाए और मेरी तरफ दौड़ा आया। मैंने उसे जी भर कर देखा—उसका गाढ़ा रंग फैलकर हलका हो चुका था भूरे से सोनलिया ! मुंह तीखा-तीखा था जिसका अगला हिस्सा गहरा काला होने के कारण उसकी समूची सोनलिया काया को दीप्ति सी मिली हुई थी। कान कागज के बड़े फूल से पतले सुभावने और आंखें इतनी काली कि कजरारी कही जा सकें। कुल मिलाकर जैकी एक खूबसूरत कुत्ता था। मैं देर तक जैकी को देखता रहा और तरह तरह से उसके बारे में सोचता रहा। फिर भी मैं उसकी खुशहाली से सहमत नहीं हुआ और अपने में उसे बाड़े से बाहर देखने की पुरानी ललक पहचान गया। उसके हाव भाव से प्रकट हो रही संतुष्टि और प्रसन्नता एकाएक मुझे अपने बर्दाश्त से बाहर लगने लगी। मैंने मन-ही मन उसे चुनौती देते हुए कहा कि जरा ठहर, मैं तुझे बाहर करके ही दम लूंगा।

६

इस तरह मैंने पाया कि जैकी फिर मेरे अंतस में फड़फड़ा रहा है—उसे वहाँ से उड़ाकर खुले आकाश का स्वाद चखाए बिना मेरा छुटकारा न होगा। दो बार पहले से एक अंतर यह था कि मेरे हौसले बुलंद थे। लगता था कि कुछ भी मुश्किल नहीं, सब आसानी से हो सकता है। इस

बुलदी म मुझे अपनी पिछली सब चेष्टाएँ अधूरी और ओछी लगने लगी सब-कुछ नये सिरे से करने के लिए एक अजब उत्तेजना मुझ पर नशे की तरह छाने लगी। इसके बावजूद थोडी दूर चलते ही, मैंने अपने को अकेला पाया। मुझे सोचना पडा कि कौन हो सकता है जिससे इस पेचीदे काम मे कोई सहयोग ले सकू। या, क्या बिना किसी के कहे-सुने अकले सब कुछ अजाम दे डालू ? बात करने को भी किसी दूसरे की खोज शुरू की, तो अचानक पाया कि समूची दुनिया निजन हो गई है। जिसके पास फुसत होती कि ऐसे सिरफिरे अभियान का जरा भी भागीदार बने !

एक आदमी था जिस पर मेरी उम्मीद की डोर डेरे डालने लगी—शब्दशरण जी ? उन्होंने अपनी पहल से मेरे आगे जकी की बात छेडी थी और यह भी बताया था कि वही उसे रोटी पानी देकर पालते रहे थे। एक धुधली सी उम्मीद बनी कि जरूर उन्हे जकी मे थोडा-बहुत मोह होगा। परतु शब्दशरण जी को मेरे मन ने कभी किसी काम का आदमी स्वीकार ही नही किया था। सामने पडने पर उनको रस्मी तौर पर या देखा-देखी अभिवादन जरूर करता था, लेकिन उनके दशन होने पर पता नही क्या मुह का जायका बिगड जाता था। एक नाजुक नाम के धारक होकर भी शब्दशरण जी अपने उजडडपन के लिए नामी थे। उनकी कद-काठी, चाल-ढाल और व्यवहार को तोलकर लोग उन्हे पीछे स 'ऊँट' कहना पसन्द करते थे। अपने प्रिय चेला मे भीवे 'ऊँट मास्साब' कहाते हैं—यह भी मुझसे छिपा नही था। फिर भी, विवशता थी कि जैकी प्रकरण पर बात करने के लिए उनसे बढकर दूसरा कोई न था।

मैं झिझकता हुआ उन्ही के पास जा पहुँचा। उनका लडका मेरी पुरानी मण्डली का सदस्य था, परन्तु मेरे होस्टल से आने के बाद मुझ से कटा-कटा रहने लगा था। वर्ना मैं उसके पिता से पहले उसी पर अपना दारामदार टिकाकर देखता। मैं जब पहुँचा, वह घर पर भी नही था। मेरे सामने बाधा यह थी कि कहाँ से शुरू करूँ ? वह झेंप और लाचारी मुझे अभी तक ज्यो की त्यो याद है जबकि शब्दशरणजी की समूची गहस्थी मेरे सत्कार मे बिछती सी नजर आ रही थी। कस्बाई जीवन के हिसाब से मेरे पिताजी का कद काफी ऊँचा था, जिसने मुझे भी एक

अकारण दर्जा दिलवा रखा था। शब्दशरणजी की अनपढ़ और देहातिन पत्नी बहुत ममतापूर्वक मुझसे बोली-बतियायी। उनकी सात आठ बरस की लड़की आंखों में ढेर सा अचंभा सँजोये मुझे देखती रही, फिर दरवाजे के पल्ले से सटकर लजवती बन गई। वह छोटी सी लड़की अपनी अवस्था के परवार, फालतू की लाज ढोते कितनी भोंडी लगी होगी, यह आज भी सोचने की बात है। हमारे गांवों और कस्बों में लड़कियाँ क्या लाज पहन पहने जन्मती हैं? बचपन में बचपन से विलग होते बच्चे कितने अप्रीतिकर हो जाते हैं यह जानना हो तो मेरे एक दोस्त का सुनाया हुआ किस्सा सुनिए। अपनी बैंक की नौकरी में वह जहां रहता है, वहीं उसने पाँच बरस की एक लड़की से ठिठोली कर ली। लड़की कहीं भागी जा रही थी, उसने लपक कर उसकी बाँह थामी और सामने जीभ निकाल दी। लड़की ने हाथ झटकते, आँखें तरेरते कहा कि ऐसी हरकत अपनी घरवाली के साथ करना। यह है कोंपल में छिपी हुई डंठल की ऐंठन!

मैं सबके साथ शब्दशरणजी को गुरु जी ही बुलाता था, परंतु मेरी स्थिति उनके किसी चालू चेले से भिन्न थी। जैकी के अलावा कोई और मामला होता तो शायद मैं तनिक कभी न झेंपता। चूंकि जैकी में मुझे अपनी स्वयं की दिलचस्पी ही ऐसे भार सरीखी लगती थी जिसने मेरी आत्मा पर भवारी गाँठ रखी थी और मैं चाहकर भी इसे परे नहीं कर सकता था। हालांकि इसकी अपरिहार्य और कष्टदायी कार्यवाही शुरू करने में ही शब्दशरणजी की शरण में पहुँचा था। ऐसा लगता था जैसे जैकी नहीं मैं ही किसी बाड़े में बुरी तरह घिर गया हूँ।

अपनी झिझक को धकेलकर मैंने शब्दशरणजी से पूछा, "गुरुजी अपने जैकी के लिए क्या करना चाहिए?"

"क्या करना चाहिए?" शब्दशरण जी मेरे पूछने पर चौंके और प्रतिप्रश्न किया, यह बताओ, क्या हो सकता है?"

उसे बाड़े से बाहर तो निकालना है न!"

किसलिए? वह तो अपने बाड़े का बादशाह है, तुम्हें क्या तकलीफ है?" शब्दशरणजी इस बार आदत मुताबिक खिलखिला पड़े।

मुझे उनकी हँसी किसी ताने की तरह काट गई। घायल होकर मैं

भीतर भीतर छटपटाने लगा। हँसी थमते ही मैंने तैश में कहा, "मैं उसे बाहर निकालकर रहूँगा।"

शब्दशरणजी ने मुझे पल भर पराई सी नजर से देखा और बोले, "किस निकालोगे? वह बाहर आना ही नहीं चाहता।"

"क्यों?" मैंने अबोधपन से पूछा।

"एक बार निकाला था, फिर मुझे ही इसे वापस अंदर डालना पड़ा।" शब्दशरणजी ने आश्चर्यजनक गंभीरता से कहा।

"जैकी बाड़े से निकला था?" मैंने व्यग्रता से जानना चाहा।

"हां, बाड़े वालों ने निकलवाया था। उनके नौकर लट्ठ लेकर पिल पड़े इस पर इसने उनका बाड़े के खूब चक्कर कटवाये, पर इतनी जगह में कितनी देर भागता? एक पट्टी उखाड़कर वे अंदर गए थे, जकी मार से बचता बचता उसी रास्ते गली में भाग आया। उन्होंने पट्टी लगाकर बाड़ा बंद कर दिया और जैकी बाहर रह गया। शब्दशरण ने किसी चश्मदीद गवाह के बयान की तरह बता डाला।

"तो फिर आपने इसे वापस बाड़े में क्यों डाल दिया?" मैं आवेश में आता बोला।

"क्या करता?" शब्दशरणजी एकदम सयाने नजर आने लगे। बोले "बाहर इसे रास नहीं आता था। मुश्किल से दस दिन बाहर बिताये इसने। हरदम दूसरे कुत्तों से डरा सहमा दुम दबाये छिपता फिरता। कुत्ते इसको सूंघ सूंघ कर चले जाते, यह अपने शरीर को सिकोड़े पड़ा रहता। छिपने की तलाश में लोगों के घरों में घुस पड़ता। हमारी तो छत तक चला जाता था। भूखा प्यासा और लुटा पिटा सा रहता। दस दिनों में यह सूखने लग गया। मुझे इसकी हालत पर तरस आ गया और मैंने इसे उठा कर बाड़े में छोड़ दिया। दुबारा वहां पहुँचते ही इसने बाड़े का एक चक्कर लगाया और जाकर अपने सिंहासन पर विराजमान हो गया।

जैकी का बाड़े में एक ही सिंहासन था, जमी हुई चिकनी मिट्टी का ढूह।

यह सुनकर मैं वहां से चुपचाप चला आया था। जैकी के बाहर निकलकर बाड़े में दुबारा पहुँचने के किस्से ने मुझे झकझोरकर छोड़

दिया था। सदमे की हालत म मेरे हाथ पैर चार-पाच दिन ठडे रहे होंगे और मैं अपने भारी मन को समझाना चाहने लगा कि इस बखेडे से पीछा छुडाना ही ठीक रहेगा। कुछ देर के लिए मैंने अपन अदर की फडफडाहट को दबा डाला, पर वह और भी तेज होकर उभरने लगी। मेरी इस बुरी हालत का एक भी हिस्सेदार न था, जिससे इसे थोडा बहुत भी बाट लू। हास्टल जाते ही यहा सबसे दोस्ती छूट चुकी थी। घर म कोई समवयस्क न था। मा या पिताजी का कहने के नाम से ही फटकार सुनने लगती। एक ही चारा था—जैकी पर गुस्सा करना और इसकी अभिव्यक्ति में मैंने अपने-आपको उसे देखने जाने से रोके रखा। ऐसा करते हुए लगता था कि मैं अपन को चारा तरफ से जकडे हुए हूँ। यह जकडन मेरा दम घोटने लगी।

मेरा होस्टल लौटने का दिन सरकता हुआ पास आ रहा था। यही एक बात थी, जिससे मुझे राहत मिलने लगी। सोचने लगा कि वहाँ पहुचकर इस नालायक जैकी से पिण्ड छूट जायगा। यहा रहते कसमकस का चारा न था। बार-बार इच्छा होती कि उसे देखू—वह कहाँ बठा है? क्या कर रहा है? कही बाहर तो नही निकल आया? क्या अब भी उससे उम्मीद रखी जानी चाहिए कि वह बाडे की हद छोडकर समूची पृथ्वी का होना पसद करेगा?

एक दिन मैं हार गया। अपने से जूझने म पिछडकर बाडे क पास जा धमका। दोपहरी थी, सयोगवश गली एकदम सूनी थी। मैंने फाँक म से बाडे मे देखा। जैकी कही दिखाई नही दिया। और भी बेसब्री मे मैं उचक उचक कर उसे ढूढने लगा था कि सहसा किसी न मेरे कधे पर हाथ रख दिया। मैं इस अप्रत्याशित और खुरदरे स्पश स चौंककर पीछे मुडा।

"क्या देख रहे हैं बाबू?" टखना से काफी ऊँची लुगी पर सूती बडी पहन गठीले बदन का एक आदमी मुझसे सवाल कर रहा था।

'कुत्ता।' मैंने उस पहचानने की कोशिश करते हुए बताया, 'मेरा कुत्ता है इस बाडे म उसे ही देख रहा हू।

'हम दख दें।' वह हसा।

मैंने उसके हुलिये से ही उसका परिचय पा लिया था। बाजार म पलदारी करने वाला बिहारी मजदूर था, जो मुझे स्थानीय सेठ साहूकार का लाडला समझकर अदब मे बात कर रहा था।

"कैसे ढूढोगे ?" मैंने पलटकर पूछा।

"बाडे म जाकर, और कैसे ?"

"तुम बाडे मे जा सकते हो ?" मुझे उसकी सरलता पर विश्वास नही हो रहा था।

"क्यो नही हम तो तुम्हारे कुत्ते का पकड भी लायें।" उसने उसी तरह कहा।

"मैं तुम्हें पाच रुपये दू"। ।"

"अच्छी कही बाबू ई कुतवा कौनो चीनी का बोरा है जिसका उठान के हम तुमसे पैसा लेंगे ?" मेरी बात पर वह ठठाकर हँस पडा।

"तो जाओ, अन्दर !" उसे खडे देखकर कुछ देर बाद मैंने कहा।

७

पलदार न मेरे कहने को चुनौती समझा और फुर्ती से आगे बढा। उसकी चाल पुराने अनुभवी की सी थी और चेहरा ऐसे काम को चुटकी का खेल बताने वाला। बाडे के दक्षिणी छोर पर, लम्बाई से चौडाई की तरफ घेर के मुडने से जहाँ दो पट्टियो का कोना निकला हुआ था, पलदार पल म पहुँचा और पलक झपकते उछलकर उसने कोने की पट्टी का ऊपरी छोर लपक लिया। मैं हतप्रभ देखता रहा, पलदार लगूर के लहजे मे ऊपर चढकर बाडे म कूद पडा। भीतर से उसकी आवाज सुनाई पडी, "अब पकडता हूँ साले कुतवा का कान।"

मुझे अपने समूचे शरीर म एक झकार सी बजती जान पडी। बेसब्री से भरा कलेजा मुह को आ रहा था। मैं बेकाबू सा, इधर उधर, ऊपर नीचे आँखें टिकाता, गदन नचकाता बाडे के भीतर का चप्पा चप्पा देखते रहना चाहता था। कीकर पहले जितन घेर घुमेर और सघन न थे, परन्तु बाडे के उघडे अग छिपाने क लिए आचन के पल्ला मे आडे आ रहे थे। मुझे पलदार या जकी की कोई झलक मिलती, फिर वे कही ओझल हो जात।

भीतर भगदड हो रही थी, बाहर मैं जमीन पर पैर नही टिका पा रहा था। ऐसा चलते कितना वक्त बीता कि जैकी की गुस्सल आवाज सुनाई पडी—भौ भौं भऊ भऊ ऊ ?

"पकड ला, पकड लो इसे !" मुझे दौरा-सा पडा जैसे, मैं उत्तेजना से भरकर चीख पडा।

"ठहर ता तनिक, भागेगा कितनी दूर ?" पलदार की धमकाती आवाज गरजी।

मेरा बचा-खुचा सब्र भी टूटने लगा। इतनी चेष्टाओ से भी मन मुताबिक दिखाई नही देता था—गुस्से और झुझलाहट से भरकर मैं पट्टियो झकझोरने लगा। इस वक्त पट्टियो की बजाय किसी किले का मजबूत दरवाजा होता, तो भी मैं उस पर टूट पडता। मेरी रग रग खिचती जा रही थी। पहली, तीसरी, पाचवी या सातवी न जाने वह कौन सी पट्टी थी, जो मेरे झटके से जरा सी हिली थी। मुझमे मानो हजार हाथियो का बल समा गया, मैंने अपने को झोंककर पट्टी को झटके पर झटका देना शुरू किया। थोडी देर बाद ही अपनी जड की मिट्टी का जमा हुआ हिस्सा उछालती पट्टी गली की तरफ आ पडी—धडाम! अगली सास मैंने बाडे के अन्दर पहुँचकर ही भरी।

जकी गुर्रा रहा था। मैं काँटो, ककरो और कीचडो के बीच से उधर लपका, जिधर गुराहट सुनाई दे रही थी। बाडे के उस पार पलदार जकी को कोने मे कैद किए था। टाँगें और बाहु फलाय वह जकी का निकल भागने से रोके हुए था। जैकी डरा हुआ दीख रहा था और लाचारी से ही गुराता जा रहा था।

पलदार ने मुझे देख लिया था, गदन को झटका देकर बोला, "ओ बाजू से कुतवे के पास जाओ इधर हम हैं।

मैं डरता डरता और धीरे धीरे आगे बढ़ने लगा।

सहसा पलदार का गठीला शरीर बिजली ज्यो कडका और उसने जैकी को जा दबोचा। जैकी ने अतिम बचाव के लिए पलदार के हाथो पर जबडा चलाने की अधूरी सी कोशिशें की। पलदार ने हाथ बचाते बचाते ही उसका जबडा एक ही हाथ मे जकड डाला। मेरी तरफ मुह घुमाया,

बोला, "टाँगें पकडो न इसकी तुम्हारा कुत्ता है, तुमको नहीं काटेगा कभी !"

मैं और आगे बढ आया और पलदार की पकड म कसमसाते जकी की कचीनुमा टाँगें पकड ली। कुछ देर मेरे हाथ टाँगो के साथ साथ चले, फिर मैंने जोर लगाकर हरकत बद कर डाली। मेरा हौसला धीरे-धीरे लय पर आने लगा था।

"उधर चलो, लेकर !" पलदार न गली की तरफ इशारा किया। जकी की गदन मे बाहू लपटकर उसे उठाते हुए वह आगे-आगे चल पडा। मैं जैकी की टाँगें थाम थामे पलदार के पीछे घिसटता हुआ सा जा रहा था। ऊबड खाबड पार कर हम गली पर आ गए थे। गली और हमारे बीच पट्टियाँ थी, वही दस फुटी जाघपुरी पट्टिया ! पलदार ने दो कदम पीछे धरकर अनुमान साधा और मुझसे बोला, "उछाल दो बाहर चिंता मत करो, मरेगा नही कुतवा।"

मैं अपनी राय पर पहुँचता, इससे पहले ही सब कुछ हो चुका था। पलदार ने अपनी मजबूत और फडकती भुजाओ से जैकी को उछाल दिया था, मेरे हाथो मे उसकी टाँगें झटके के साथ ही निकल गयी और अगले क्षण ही बाडे के बाहर से उसकी पा पा उभर आई।

उसकी पा पो सुनकर पलदार जोर से हसा और फिर हाथ झडकाता बोला, 'इतनी सी बात अब ठीक है न ?"

मुझे उखडी हुई पट्टी याद आ गई। मैं तेजी से उधर बढा—कही उसी रास्ते जैकी वापस बाडे म न घुस जाए ! पलदार मेरे पीछे पीछे चल कर उखडी पट्टी के पास गली मे खडा हो गया था। मैं जैकी को देख रहा था, वह आसपास कही न था। शायद पलदार मेरी व्यग्रता भाप रहा था, अचानक बोला, "वो देखो उधर ।"

मैंने मुडकर देखा, पिछले चौराहे बाद की लम्बी गली म बदहवास होकर भागता हुआ जकी आ रहा था। भागते भागते वह झटका लेकर रुकता और जमीन पर नाक लगाकर फिर भागने लगता। मुझे उसकी इस निराली चाल पर हँसी आई। मै भी खुलकर हँस पडा फिर पलदार से कहा, "यह पट्टी खडी कर दें ?"

हमने पट्टी फिर खड़ी की, जड़ में मिट्टी के साथ कंकड़ पत्थर भरकर उसे दृढ़ किया और हिलाकर देखा—वह बाड़े की हिफाजत में अपने वक्त पर अडिग हो चुकी थी। पलदार ने एक बार और हाथ झड़काया और मेरे सामने हंसकर चल पड़ा। मेरी आंखों में मारे खुशी के आंसू चू पड़े थे, जिन्हें देखने की उसे जरा भी फुर्सत न थी।

जैकी फिर इधर उधर हो गया था, मुझे पता ही न चल पाया। मुझे जैकी के बारे में शब्दशरणजी का बताया वृत्तांत याद आया और मैं आशंकित हो गया। बाड़े से पश्चों पर नजरें जमाए गए जैकी को पश्चों का बनाये रखना भी एक काम हो गया था। मेरी छाती पर से जैसे एक शिला सरक चुकी थी, मैं अपने को बड़ा हलका महसूस कर रहा था, अब मुझे कठिन तपस्या से मिलने वाली सिद्धि जैसा अपना यह हलकापन बचाये रखने की फिक्र लगी। मेरा वजूद इसकी अमलदारी के लिए उतावला मचाने लगा। मैं हाथ पैरों से मिट्टी झाड़कर चौराहे पर आया। चारों तरफ निगाह पसारी कि जैकी दिखाई पड़े। सहसा दायीं गली से जैकी प्रकट हुआ। उसके पीछे पीछे तीन कुत्ते आ रहे थे, जो रह रहकर उसकी दुम सूंघते चल रहे थे। मैं उसकी तरफ बढ़ा और पुचकार के साथ पुकारा, 'जैकी जैकी!' उसने भयभीत आंखें उठाकर मेरी तरफ देखा। मैं उसको दुलारने के लिए करीब पहुँचा तो तीनों कुत्ते पीछे हट गये। जैकी मेरे पास पहुँचते ही सहमकर अंग सिकोड़ने लगा। मैंने उसकी गर्दन और पीठ पर थपथपी दी, तो वह जमीन पर अधलेटा सा हो गया। पुचकारते हुए यही क्रिया दोहराने पर जैकी ने मेरी तरफ आंखें फेरीं—अपार याचना थी उसकी आंखों में लगता है कि कुत्तों को भी इंसानों की तरह जार जार रो पाने का वरदान मिला होता, तो जैकी भी उन क्षणों में यही करने लगता।

मैं जैकी को हौसला बंधाकर सीधा शब्दशरणजी को ढूंढने गया। इस बार झिझक की जगह एक अनूठे आत्मविश्वास ने ले ली थी। मिलते ही मैंने उनसे जैकी को किसी सूरत में फिर बाड़े में न छोड़ने की मनाही बड़े अधिकार के साथ कर डाली। वे आंखों में गहरा अचम्भा लिए देखते रह गये। थोड़ी देर बाद प्रभाव में आये हुए आदमी की तरह बोले "नहीं, मैं

भला जैकी को बाडे मे क्यो धकेलूगा तुमने इतना बडा काम किया है, यह खुशी की बात है। मैं उसका पूरा ध्यान रखूगा कि वह फिर बाडे की तरफ मुह भी न उठाए।"

इसके बाद मैं राज जैकी को देखने चला जाता था। जाते हुए उसके लिए सिंधिया की बेकरी से सूखे बिस्कुट खरीद ले जाता। कुछ दिन वह मुझसे सहमा-सहमा रहा, फिर बडे चाव से मेरे दिए बिस्कुट खाने लगा। उसके साथ साथ मैं उधर के दूसरे कुत्ता को भी बिस्कुट खिलाता। सब कुत्ता के बीच मे खडा खडा वह निर्भय होकर बिस्कुट खाने लगा, तो मुझे अपार खुशी हुई। मैं देख रहा था कि उसके फालतू डर की गाठें धीरे-धीरे खुलती जा रही थी और वह बाहरी दुनिया के साथ हलमल बढाने लगा था।

यह समाचार कि मैं जैकी को बेकरी के बिस्कुट खिलाने जाता हू शब्दशरणजी ने सविस्तार पिताजी तक पहुँचा दिया था। एक दिन मुझे बुलाकर उन्होने सारी पूछताछ की। मैंने सकोचपूर्वक सारा किस्सा बयान किया, तो वे बोले, 'ऐसा करें, जकी को तुम्हारे साथ होस्टल भेज दें। इतनी लगन दिखाओगे, तो तुम उसे कुत्ते स इसान बना डालोगे।"

मैं आखें झुकाये बैठा था। पिताजी न मेरे कन्धे पर हाथ रखकर फिर कहा, "शाबास!" मैं सुनकर गदगद हो गया। सहसा मेरी रुलाई फूट पडी, और ठीक इसके पीछे मैंने मुस्कुरा दिया—एकदम उजली और निस्कलुष मुस्कान रही होगी वह, जो आज भी अपनी याद भर से गुदगुदा जाती है।

८

छुट्टिया खत्म हो गयी थी। वक्त कैसे बीता, कुछ हिसाब ही नही रहा। मुझे जैकी को छोडकर होस्टल चले जाना पडा। पहले कुछ दिन मैं बहुत अनमना सा रहा। हर पल जैकी की याद सताती रहती। उसकी सोनलिया काया और उदास उदास आँखें अलग अलग भाव मुद्राओ मे मेरी आँखो मे मँडराती रहती। मैं जब तब घर पर चिट्ठी लिखने बैठ जाता। इस बार पिताजी मुझे जैकी के पूरे समाचार लिखते थे। शब्दशरणजी के

हवाले से मुझे खबरें मिलती रहीं कि जैकी बाहर ही है, मौज में है, सबसे हिलमिल गया है, डरता नहीं, गुर्राता और लड़ता भी है। जैकी के हाल-चाल पढ़कर मैं मारे खुशी और आह्लाद में झूम उठता था।

लेकिन धीरे धीरे यह सिलसिला ढीला पड़ता गया। एक बच्चे के लिए दुनिया नित नये चोले बदलकर सामने आती है। वह उसके दिल और दिमाग को हमेशा नयी अदाओं से लुभाती रहती है। मेरे सामने भी पढ़ाई लिखाई, चित्रकला और संगीत ड्रामों से ठसाठस हॉस्टल की विराट दुनिया थी, जिसमें जैकी के लिए हमेशा एक सी जगह बनाये रखना संभव न हुआ। उसकी याद धुएं की गति से उठी थी, जो चौड़ा आसमान पाकर छितराती चली गई। जैकी घर से जुड़ी अनगिनत यादों की लड़ियों में एक लड़ी बनकर कहीं खो चुका था।

६

ये बातें कितनी पुरानी हैं? एक कुत्ते की आयु के हिसाब से सोचें, तो इतनी कि जैकी को शायद आज कहीं नहीं होना चाहिए—न बाड़े में और न बाहर! तब भी जैसे उसकी उपस्थिति ही नहीं, अनुपस्थिति तक हर पल जीवित है—मेरे साथ! आप शायद यह सवाल जरूर करना चाहेंगे कि जैकी से मेरी अगली मुलाकात हुई या नहीं? यदि मैं आपका इस सवाल की कगार तक साथ न ला सका, तो समझूंगा कि यह किस्सागोई बेकार रही। लेकिन नहीं, मुझे यही लगता है कि आप इस सवाल का जवाब चाह रहे हैं। काश इसके जवाब में मैं उस व्याकुलता का चौथाई भी आप से बाँट सकता, जो मैंने जैकी से अपनी अगली मुलाकात करने जाते हुए अकेले भोगी थी।

जैकी को देखे मुझे चार साल बीत चुके थे। उसको देखने की चाह मेरे अन्दर किसी सर्प सी कुंडली मारे बैठी रहेगी और हल्के से इशारे से फुफकारकर फन उठायेगी, ऐसा मैं सोचता भी न था। होस्टल में फिर लौटना उस कस्बे में कभी हुआ ही न था, जिसमें जैकी को मैंने पहले बाड़े में और बाद में बाड़े से बाहर देखा था। पिताजी पदोन्नति लेकर जयपुर आ बसे थे। चार लम्बे बरसों की परतों ने मेरे बचपन को कई गुना भारी कर

डाला था। मैं कद काठी, चाल ढाल, आवाज और पहनावे तक से बड़ा नजर आने लगा था। स्कूल की बजाय मैं कालेज जाने लगा था। कॉलेज के एक ग्रुप के साथ ही मेरा उधर जाना हो रहा था—जैकी के कस्बे से सत्तर किलोमीटर दूर जिला मुख्यालय। वहाँ कोई नाटकों की प्रतियोगिता थी, जिसमें मेरे कॉलेज के नाटक दल में मैं भी शामिल था। हमें वहाँ लगभग दस दिन ठहरना था।

चलते वक्त जैकी की याद का दूर दूर तक भी कोई निशान न था। वहाँ पहुँचकर भी शुरू के चार पाँच दिन हमारी प्रस्तुतियों ने हमें साँस तक न लेने दी। जैकी जैसे अभी तक केंचुल चढ़े साँप सा बिना हिल डुले भीतर पड़ा था। तभी हमें फुर्सत मिली। हमारी प्रस्तुतियाँ निपट चुकी थीं और हमें सिर्फ परिणामों की प्रतीक्षा थी। हममें से ही किसी ने 'घोरे' देखने की इच्छा प्रकट की थी। यही था वह इशारा! वह कस्बा, जिसमें मैंने जैकी के साथ अपने बचपन का एक मजेदार हिस्सा बिताया था, रेतीले टीबों के लिए खूब प्रसिद्ध था। कुछ बड़े होने पर मुझे फिल्मों के माध्यम से ही पता चला था कि उस बेरौनक कस्बे में भी एक प्रसिद्ध होने जैसी चीज थी—कस्बे के एक छोर पर पसरे हुए सोने के बुरादे जैसी पीली रेत के धोरे! फिल्मों में पर्दे पर देखे इन्हीं धोरों को जीते जागते देखने की बात चली थी, कि मुझे अपने भीतर आँधी सी उठती जान पड़ी। वह आरपार गलियों, हवेलियों, सेठ सेठानियों और विशाल बाड़ों का कस्बा मुझे जैकी के माफिक पुकार उठा। सबसे पहले जैकी और फिर शब्दशरणजी ने भी मुझे बुलाया। मैंने बढ़ चढ़कर 'धोरे' देखने की बात का समर्थन किया और इस पर आम सहमति हो गई।

बस से डेढ़ घंटे की यात्रा थी। मेरे अलावा सब पर स्वच्छन्दता और मस्ती तारी थी। मैं चुपचाप बैठा हुआ बस की खिड़की से पीछे भागता बोरटियों का जंगल देख रहा था। मेरे पास बैठे साथी ने मुझे दो तीन बार कोंचा कि कहाँ खो गया हूँ! मैं उसे क्या बताता? मैंने किसी को नहीं बताया था कि मैं इस जगह से परिचित हूँ—शायद इस डर से कि कहीं जैकी के बारे में कुछ मुँह से निकल न पड़े! मेरे साथियों के लिए जैकी का क्या मोल ठहरे, इसकी कल्पना ही दुश्वार थी। वे सब उस जगह के

पले बढ़े थे, जहा मैंने कुत्ता को या तो लोगो के घरा म जजीरो स बधा देखा था, या फिर नाजुक नफीस गोदियो मे इठलाते। जैकी जैसे कुत्ता का जिन्दगी मे उनकी दिलचस्पी जगाना, उन्हें अपने पर हँसने की दावत दना था। इसलिए मैं अपन म लीन चुपचाप बठा था, और मेरी चुप्पी म जैसे मिसरी घुलती जा रही थी। इस मिसरी की डली का नाम था—जैकी!

इन चार बरसा न जैकी पर क्या क्या रग चढाये हाग? वह मुझे पहचान ता लेगा? पूरी यात्रा मे उसके सामने आनेवाले स्वरूप की कई कई कल्पनाएँ मेरे मन को आच्छादित किये रही। रास्ता जसे छोटा हान की बजाय लम्बा होता जा रहा था। किस पल जाकर मैं जकी के सामने खडा हाऊँगा इसी मिठास भरी व्याकुलता से मैंने सबके साथ अकेल यात्रा पूरी की।

मेरे साथी बस से उतरते ही 'घोरा' का रस्ता ढूढने लगे। उनकी पूछताछ स खिचकर तांगवाल दौडे आए और एक प्रकार की अफरा तफरी मचन लगी। हर एक तांगवाला अलग अलग ढग से उन्हें लुभाना चाहता था कि गाव की सीमा तक वे उसक तागे में चले चलें। मुझे मौका सा लगा और मैं चुपचाप वहा से सरक लिया। मेरे कदम कस्बे का चप्पा चप्पा पहचानते थे, छाट स छाटा रास्ता चुनकर वे मुझे वही ले पहुँचे—जैकी के बाडे! बाडा ज्या का त्या मुह बाए सा मौजूद था। मैंने चाफर नजर पसारकर देखा जैकी शायद कही नजर आ जाए। हल्का सा सशय मन में जमा कि मैं उसे पहचानन मे न चूक जाऊँ! परन्तु तत्काल ही अन्दर स आवाज आई—नही! जकी कही होता, ता नजर आता। आखिर मैंने शत्रुघ्नजी का दरवाजा खटखटाया।

शत्रुघ्नजी हर भाँति जहाँ के तहा बन हुए थ। अलबत्ता उनकी पालिश बीतते बरसा खुरच डाली थी। उनक मीठे तेल से सन रहनवाले बाला म स मक्खी बढ चढकर ताक झाँक कर रही थी। मैंने अपने अचानक चल आने के बारे मे सविस्तार बताकर वजन इस पर रखा कि मैं उन्हीं स मिलन चला आया हूँ ता वे भाव विभार दीखन लगे। मेरे पिताजी क दबन्ध का नाम माना फिर स उनक कधो पर उतर आई। व पिताजी का

बुरी तरह याद करने लगे। बात बेबात खिलखिलाने की उनकी आदत भी यथावत थी, जिससे कांपते खाता हुआ मैं असल बात का इन्तजार करने लगा। आश्चर्य की बात थी कि उन्होंने मेरी अथाह ललक पर कोई ध्यान नहीं दिया, जैकी के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा। मुझसे रहा नहीं गया और बरबस मैंने पूछा, "वह कैसा है, जैकी ?"

"जैकी ?" अपने ललाट में बल डालते हुए उन्होंने याद करने वाली मुद्रा में कहा, "वह बाड़े का कुत्ता ?"

"हां, जिसे मैंने बाड़े में बाहर ।"

मेरा वाक्य पूरा होने से पहले ही शब्दशरणजी चिहुंक पड़े, 'अरे हां, याद आ गया लेकिन जैकी तो कभी का मर चुका !"

"नहीं !" मेरे मुंह से बेसाख्ता निकल पड़ा।

"हां, भई !" वे नसीहत किस्म की तटस्थता धारण किये हुए बोलने लगे, "उसे मरे तो बहुत दिन हो गये।"

"कैसे मरा ? किसने मार डाला उसे ?" पूछते हुए जैसे मेरी जीभ में ऐंठन हुई।

"एक टक ने।" वे बताने लगे, "लेकिन जैकी खुले में मरा, बाड़े में नहीं। उसे जरूर किसी की नजर लग गई होगी, कैसा प्यारा कुत्ता था। तुम्हें शायद पता नहीं, वह किसी एक गली का कुत्ता नहीं था। पूरा कस्बा उसका अपना था। नहीं तो वह वहां कैसे पहुंचता ? बाजार से चार गली बाद कृषि मण्डी वालों की बाईं पास सड़क है न, वहीं। देखनेवालों ने बताया कि जैकी की कोई गलती नहीं थी, वह सड़क के किनारे अपनी मौज से चल रहा था। पीछे से लड़खड़ाती ट्रक आई और उसे बचते बचते भी चपेट में ले लिया। ड्राइवर नशे में धुत्त था, जैकी का कुचलकर खुद भी मारा गया। ट्रक सड़क में पलटा खाकर माचिस की डिबिया की तरह लुढ़की पड़ी थी। मुझे क्या पता लगता, अगर बच्चे आकर नहीं बताते। मैं खुद वहां गया था। जैकी का पिछला हिस्सा तो सड़क पर छितरा पड़ा था, लेकिन मुंह एकदम सलामत था। मरने के बावजूद उसकी आंखें खुली थीं। मैंने उसे तुरंत पहचान लिया कि अपना जैकी ही है ।'

बोलते बोलते शब्दशरणजी निःशब्द हो गये। कुछ देर मुझे घूरकर

लगने रहे फिर मुस्कराकर पूछा, "तुम रो क्या रहे हो ?"

मेरे पास इसका कोई जवाब न था। हाँ, मैंने खुद जाना कि मेरी आँखों पर पानी का चादर चल चुकी है। दोनों आँखें हथेलियों से पोछकर मैं शब्दशरणजी की आँखों में झाँकने लगा। पल भर में ही मुझे अपना इच्छित दृश्य नजर आया—सड़क की सतह से एकमेक जर्की की लाश! पूरा धड़ खून से लिथड़ा हुआ, मगर उसका प्यारा मुखड़ा ऊपर उठा हुआ था मेरी तरफ! मैं शब्दशरणजी की आँखों के पार, जर्की की आँखों में झाँकने लगा था। वे भोली आँखें आज याचना से नहीं, कृतज्ञता से भरी थीं। भला जर्की मेरे किस उपकार के लिए कृतज्ञता जतला रहा था? छुटपन से लेकर आज तक मैं न जाने कितनी बार इस जिज्ञासा के अथाह समुद्र में तरता उतराता रहा हूँ, शायद कभी कोई मोती हाथ लगेगा!

विरासत

मदजी थे, ठीक मदजी। अपनी सदैव की फुर्तीली चाल चलते हुए उन्होंने रोड लाइट का दायरा पार किया, तो मैं अच्छी तरह पहचान गया। जैसे कि अधिकांश लोग करते हैं। मसखरी करने के लिए ही मैंने उन्हें पुकार-कर पूछा, "कैसे मदजी, अब रात को ?"

"कुण बीरा ?" रुकते और मेरी ओर मुड़ते मुड़ते उन्होंने अपनी हथेली को आंखों पर छज्जे की शक्ल में ठहराकर पूछा। रात और वह भी सर्दी की रात। धूप छोड़, रोड-लाइट का भी कोई बेहिसाब उजास नहीं कि आंखों को खले। पर मदजी की किसी बात में तर्क ढूंढने का कष्ट तो कस्बे की पुलिस ही नहीं करती, तो मैं क्या करता। कुछ करीब जाकर मैं जैसे उनके इस छज्जे की जद में पहुंचा और बोला, "पहचाना नहीं ?"

"नहीं बीरा !"

"यह तो मैं हूं, सज्जन।" मैंने नाम बताया।

"जैमन का छोरा ?"

"हां" मैंने हामी भरी।

और मदजी मेरे और करीब सरक आये, "रात को जल्दी घर जाया करो, बीरा! तुम्हें पता नहीं, लाठियां चल गईं तलवारें निकल आईं खून खराबा हुआ अब कोई भरोसा नहीं !" आखिरी वाक्य तक पहुंचते पहुंचते उनकी आवाज फुसफुसाहट में तब्दील हो गई और आवाज के साथ ही एक कंपकंपी किसी अनजानी ठौर से उभर आई।

"कहां ? कब ?" मैंने चौंककर पूछा।

"कहां ? कब ?" उनकी आवाज फिर ऊंची हो आई और लगा कि

मरे अनजान हाने पर व रीम म आ रह हैं, "स्टशन के रास्त म, और कहाँ ?"

"किसलिए ?"

'किसलिए का मुझे नही पता पर मैं क्या कभी झूठ बोलता हूँ ?" कहकर उन्हान अपन हाथ को अपनी खास अदा म झटकाया और चल पडे। मैंने दा-तीन बार पुकारा, पर वे कहाँ सुनन लगे।

मैं जवम सयाना हुआ हूँ, मैंने मदजी का बावरा ही दखा है। पर मैं अभी तक यह तय नही कर पाया हूँ कि वे क्या सचमुच बावरे हैं और हैं तो कहा स ? उनके अतीत के नाम पर अलग-अलग मुहो से अलग-अलग किस्से सुन हैं। सबसे पहले ता अपने मा बापू से ही सुना कि मदजी क भाइया न धन क लोभ म आकर इन पर किसी बगाली तान्त्रिक से टाना करवाकर इनकी यह गत बना दी। कहीं से सुना कि इनका बेटा ट्रक की चपेट मे आकर मरा, तबसे इनका चित्त बेकाबू होकर पटरी से उतर गया। और भी कई किस्से जो सब याद ही नही रह सके।

जो हो, एक तरह से कह सकता हूँ कि मेरा और मदजी का पूरा दिन प्राय साथ साथ ही व्यतीत होता है। मैं इस कस्बे के कस्बाई बाजार म उसी पीपल के सामने पान बीडी की दूकान लगाता हूँ, जिसके गट्टे पर चढ़ कर लोगा के अनुसार मदजी अपनी 'गूग' (बावरापन) बिखेरते है। मुझे भी सचमुच कई बार लगता है कि इस पीपल मे किसी जिन्न या प्रेत का वास है जो इसके नीचे आत ही मदजी पर सवार हो जाता है और व चारो दिशाओ मे आग फेंकन लगते हैं। मेरे सामने यह सिलसिला उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी मरी दूकानदारी।

मुझे दूकान लगाय दो दिन ही हुए हागे कि मैंने पहले पहल मदजी का पीपल गट्टे पर प्रकट होते देखा।

शाम हा गई थी। आस पडोस की चाय दूकानो की भट्टिया दुबारा जलाई जा रही थी और सीलनखाई लकडिया का पीला पीला धुआँ चौफेर घुमड रहा था। पूरे दिन का गद गुबार भी बाजार के मुह पर छाया हुआ

था। मैं मुह पहचाने दो ग्राहका के लिए पान लगा रहा था और साथ ही उनसे बातें भी कर रहा था, तभी उत्तरकी ओर प्याऊके पास तीखा शोर सुनाई पडा। सब निगाहे एक साथ मुडी। मदजी कभी दायाँ तो कभी बायाँ हाथ जमीन की ओर झटक-झटककर मुह छूट गालियाँ बकते, अपने नग पैरा कदते-से आ रहे थे और पीछे तीन चार बाल गोपाल। मैं मदजी को जानता तो था, पर उनका यह रूप पहली बार देख रहा था। शायद सबसे ज्यादा भौचक मैं ही था। मेरी भागती निगाहा तले जितने चेहरे आय, मैंन सबको देखा होगा और लगा होगा कि सब चेहरा पर मदजी की इस हालत से जन्मा कौतुक रस विराज रहा था।

मैं हडबडा-सा गया।

मदजी का चेहरा ही नही, जैसे उनका अग-प्रत्यग धनुप कमान की तरह खिचा जा रहा था और उन्होने अपने पट का समूचा जोर गले म ठेल रखा था। जरा सी देर म व पीपल गट्टे पर चढ गये। एक बार चुप हुए। उनकी नाक खिचकर जैसे ऊपर हो गई। चुप होकर उन्होंने नाक का और ऊपर खीचा और गट्टे की गोलाई म फुर्ती से चक्कर पूरा किया, फिर ठीक मेरे सामन आकर थम गये। मैंने गौर किया कि उनकी रीसाई आँख मरे चेहरे पर ठहरी हुई है। उन्होने मुह ऊँचा उठाया और बोलने लग, 'मर गये, सब मर गये है कोई जिन्दा नही। कुत्ते स्साले यह थानदार दिनभर थाने की कुर्सी गन्दी करता है स्कूल म दारू की भट्ठी है, उसे मेरा बाप बरामद करेगा ?"

मदजी फिर कुछ देर चुप रहे। सप के फन की तरह अपनी गदन का डुलाया। मैंने देखा, अब कई चेहरो पर से वह कौतुक रस लोप हा गया और वहाँ अचम्भे और दु ख की छाया मँडराने लगी।

पीछे से एक बालक गट्टे पर चढा और मदजी क कमीज को झटककर फिर उतर भागा।

'जान से मार दूगा ठहरो माद !" कहकर मदजी गट्टे से कूद पडे और उसी तरह हाथ झटकते, कुलाँचें भरते बाहर हा गये।

बाजार मे आई हलचल कुछ देर और नही थमी।

लाग मुसकाते मुसकाते अपन धधो म उलझने लगे।

मुझसे कुछ देर पान की डंडी उठाते नहीं बनी, तो मेरे ग्राहकों में से एक बोला, 'क्या हुआ भइये ? यह मदजी के खटके हैं बोलो, इस साले को पता है कि स्कूल में दारू की भट्ठी है !"

'इसे कैसे पता ?" मैंने पूछा।

'बावरा है रे !" उसने सयानेपन से कहा, "छोरों ने छेड़ दिया होगा और कहीं से दिमाग में खयाल आ गया होगा बस बक लिया" कहने वाले ने गर्दन झटकी और मुस्करा दिया।

इस बात को बरस बीत, पर अभी मुझे साफ नहीं कि छोरों के छेड़ने से स्कूल में दारू की भट्ठी होने का क्या संबंध हो सकता था ? और भी उलझन तो तब हुई, जब स्कूल का चपरासी भीमाराम छ महीनों बाद ही स्कूल बाउण्ड्री में गैर कानूनी दारू बनाने के जुर्म में पकड़ा गया।

इस घटना के बाद, जाने कैसे मैं मदजी के नये शगूफों का इन्तजार करने लगा। वे पीपल के प्रेत से मुक्त कहीं आते जाते दीखते, तो या तो अपनी आदत मुताबिक खुद ही पुकार लेते, या मैं ही पहल कर देता। कई बार वे बोलते ही पहचान जाते और कई बार अपने खास अंदाज में पूछ भी लेते 'कुण बीरा ? पहचाना नहीं बीरा !"

बातचीत भी इसी तरह होती। कभी बहुत छोटी सी, तो कभी मदजी के गांव के हर आदमी से घनिष्ठ परिचय और उनसे जुड़े संस्मरणों की लंबाई तक खिंच जाती।

एक दिन दूकान से निपट कर घर जा रहा था। सर्दी थी। नौ-दस बजते-बजते रात एकदम सन्नाटे में डूबती जा रही थी। हल्की हल्की धुंध उतर रही थी। तीन गलियों का बाजार पार करने के बाद, सूनी और नगरपालिका के खंभों पर लटकते पयूज बल्बों के अंधेरे में दबी हुई गलियों में, मेरे अंदर का उजास और कल्पना का अभ्यास मेरे साथ था।

सेठ बालचंदजी की हवेली पार की ही थी कि आवाज आई, "कुण है, बीरा ?'

मैंने कदम रोके और अंधेरे में देखने लगा।

"बोला नहा कुण है ?"

"मदजी !" मैंने जवाब दिया, "यह तो मैं हूँ, सज्जन पहचान लिया ?"

"हाँ हाँ पहचान लिया ।" आवाज के साथ साथ अंधेरे म से मदजी सरकते हुए आ गये। मुझे अचम्भा हुआ भर दोपहरी म घूर-घूरकर देखनेवाले मदजी आज फकत एक बार बोलते ही पहचान कैसे गये।

"अब, घर ?" मदजी करीब आकर बोले।

"हाँ, मैं तो घर जा रहा हूँ, पर आप इस ठंड और अँधेरे म ?'

"सेठा की हवेली की हिफाजत " उनके बोलने से मुझे लगा कि अंधेरे म अदृश्य उनके चेहरे पर व्यंग्य की लकीरें जरूर खिंची होंगी।

"क्या, आपका यहा क्या धरा है ?" मैंने मजाक करने भर का पूछा, "या मठ ने इस चौकीदारी की तनख्वाह बाध दी ?"

उन्होंने मजाक पर बिलकुल गौर नही किया और फिर पूछा, "तू है तो सज्जन ही ?"

'हाँ कम से कम एक तो वही हूँ ,?"

"तो चल, मेरे घर "

मैं इस प्रस्ताव से चौंक पडा।

यह आज कौन सा नया बावरापन है ?

मदजी का घर वह मुझसे छिपा नही है। मुझसे क्या, सभी जानते हैं कि प्रमुखाल मिडिल स्कूल से सटा हुआ, ढहकर खंडहर हो चुका और चारा कोनो चौपट मदजी का घर ही है। लोग कहते हैं, भाइया की हिस्सेदारी बँटी तो मदजी के हिस्से यही घर आया। इसके ढहने के अंतिम सिलसिले का तो मैं भी साक्षी हूँ। लोग इसे सौ बरस पुराना बताते हैं। कहते हैं, इस कस्बे को जिस साल पास की रियासत के राजा ने अपने नाम पर बसाया, उसी साल यह हवेली मदजी के पुरखों ने यहाँ बनवाई। इस हवेली के ढमढेर मे बचीखुची किसी छत के नीचे मदजी अपने पूर-पल्ल रक्खे हैं और मन की किसी तरंग मे यहाँ स्नान और रोटी-पानी भी करते हैं। पर मुझे अपनी इस हवेली म, जिसके पास फटकने से माएँ अपने

मदजी के गले की शिराएँ उभर आईं। ललाट पर खिंचाव और पसीना गट्टे पर खड़े खड़े ही पहलू बदला और बोलते गये, "खा गये सारी दुनिया हजम इनके पेट में फाड़ो इनका पेट जाने कितना सोना चांदी और खेत पट्टे निकलेंगे ।"

मदजी पता नहीं क्या-क्या बोलते, तभी पहलवानी डील डौल वाला नंगे-बदन आदमी कहीं से निकलकर आया और गट्टे पर चढ़ गया। उसकी आँखों में खीरे (अंगारे) उछल रहे थे। उसने अपना चौड़ा पंजा मदजी की गर्दन पर गड़ाया और उन्हें नीचे धकेल दिया। मदजी सीधे जमीन पर ठहरे। उठने को सँभलते मदजी कि उसने उतरकर एक पूरे हाथ की जमा दी। इत्ते में गल्लेवाले केशरोजी भागे। मैं तो जैसे अपनी ठौर ही चिपककर रह गया।

आज से पहले मदजी को पिटते कभी नहीं देखा था। पीटने वाले का डील डौल देखकर मैंने सोचा कि अब मदजी में कुछ बचा भी है, या नहीं! केशरोजी ने पहुँचकर उसे एक तरफ किया कि मदजी उठ खड़े हुए, "मार मार जितना जोर है, आजमा मुझ पर जानता हूँ, तू सुबह से मेरे पीछे घूम रहा है तू अपने सेठ की नमक हलाली कर, पर वह तुझे भी नहीं छोड़ेगा ।"

यह केशरोजी और दूसरों के रोके रुका था। पर उसकी आँखें अब भी गुस्से से बाहर निकल रही थीं।

"कौन है तू ?" किसी ने आखिर उससे पूछ ही लिया।

"यह तो बावरा है इसकी बकवास से क्या होता है कोई नहीं सुनता ।" केशरोजी ने शायद उसे पहचान लिया था और उसे तसल्ली देने लगे।

मदजी कुछ देर खड़े खड़े हाँफते और बोलते रहे, फिर पत्थर ढूँढने के लिए मुड़े और मुँह ही मुँह में बड़बड़ाते हुए एक ओर चले गये।

"नहीं, ठीक था, दो-चार पड़ जाती तो दिमाग कुछ ठिकाने आता ।" कैंचियों और उस्तरों को धार लगानेवाला सिकलीगर बोला। यह सिकलीगर इसी पीपल की छाया में अपना चक्का लेकर बैठता और मदजी के प्रेम में सबसे ज्यादा सताया जाता। मदजी के बारे में बताना शुरू करते

ही, यह अपना धधा छोडकर किनारे हो जाता और उनके लौटन पर ही लौटना।

"इस किराड (बनिये) की यह हिम्मत गाँव के गूगा-बावरों के पीछे अपन लठैत लगाता है यह ता केशराजी न बरज दिया, नही तो देख लेते उस मुस्टडे का।' मूज बाँम वाले ओमजी अभी बडबडा रहे थे।

एक बात है यह मदिया खबर लाता है, उसमे कुछ न कुछ तत तो होता है।" बूढे प्रेमसुखजी बोले।

"तत हो या पत किसी के घर मे झाँकना किससे बरदाश्त होता है। तुम हम से भी नही होता सच कहूँ।' प्रेमसुखजी के जोश पर इस अनुत्साहजनक उत्तर से पानी पड गया। दोना साथ साथ मेरी दूकान आ पहुँचे। प्रेमसुखजी को दिनभर पान चरने की आदत।

बाजार धीरे धीरे अपने म लौटने लगा।

कोई दस दिन हो गये मैंने मदजी को नही दखा। शायद ही कोई, मुझ छोड, उनको याद कर रहा था। हाँ, सिक्लीगर निश्चिंतता से अपना पहिया घुमाता, उससे कचियाँ उस्तरे रगड रगडकर चिनगारियाँ उछालता अपने अल्ला का शुक्र मनाता होगा।

मेरे तो मदजी के लिए पूछने का बात होठो तक आ आकर ठहरने लगी। पूछा किसी से नही गया। पता नही क्या सकोच था? शायद यही रहा हो कि इस गूगे बावरे म फालतू दिलचस्पी दिखाना, कोई समझदारी की बात नही मानी जायेगी। फिर अगर मदजी का पूछू, तो कस्बे म और भी दो चार गूगे-बावरे है, उनकी मुझे क्यो फिक्र नही?

मन मे बात उठती और दब जाती।

आखिर मुझे लगने लगा कि बाजार मदजी के बिना सूना सूना हो गया है।

मुझे किस्म किस्म के अनुमान होने लगे। क्या पता, सेठ कानदानजी ने अपन लठतो से मदजी को लम्बा न करवा दिया हो! सेठजी क हाथ

बहुत लम्बे हैं। एक प्रान्तीय मंत्री तो उनका सगा-सम्बंधी है। उनकी साख और उनके दबदबे को सरे-बाजार चुनौती देना कोई आसान काम है?

जो हो, मदजी को याद करते-करते बेचैनी बढ़ती ही गई। मैंने निश्चय किया कि मैं आज उनकी खबर लेने उनके घर जाऊँगा। कम से कम वहाँ तक तो मैं जा ही सकता हूँ।

दिन की आखिरी चमक बची हुई थी कि मैं अपनी दुकान समेटने लगा।

"कैसे सज्जन, आज जल्दी ही?" पान खाने को पहुँचे 'क्लाथ स्टोर' वाले नन्दू ने पूछा।

"हाँ, आज घर पर थोड़ा काम है।"

"पान तो खिलाकर जा।"

मैंने सोचा कि इस एक को तो हाथ का उत्तर दे ही दूँ, पर तुरन्त ही मेरी आँखों के आगे मदजी के घर का अँधेरा और उनके ठिकाने तक पहुँचने के मार्ग की कठिनाइयाँ घूम गईं। सूरज तेज़-तेज़ डूबता जा रहा था। मैंने मन पक्का किया और मुकर गया, "नहीं यार, बापू की तबियत कुछ ठीक नहीं।"

फिर वह कुछ नहीं बोला।

मेरे पैर यों उठने लगे, जैसे मैं सचमुच ही अपने बापू की तबियत की चिंता में घर जा रहा होऊँ।

सूरज शायद धरती के किनारे आज अपनी आखिरी साँसें ले रहा था।

मदजी के घर तक पहुँचा, तो सन्नाटा पूरी तौर पर नहीं खिंचा था। एकाध औरत अपने घर के आगे बैठी बर्तन माँज रही थी और दो तीन बच्चों ने कोई 'रस्मत' मांड रखी थी।

मैंने देखा, अँधेरा अब सब कुछ लीलने ही वाला है, पर फिर भी संकोच मुझ पर हावी होने लगा। देखनेवाले क्या सोचेंगे? इसको इस गूँगे बावरे से कौन-सा 'कमतर' पड़ा है? पर मैंने सोचा कि अँधेरे के घिरने तक देर बहुत हो जायेगी और संकोच को परे धकेलते हुए मैंने मदजी के घर की बिखरी हुई सीमा में पैर बढ़ा दिया।

बीच मे खाली जमीन थी, जिसमे खडडा के साथ साथ नाम-बनाम बटे और घास उगी हुई थी। जिसे एक शब्द मे 'अलसेट' कहा जाये। कुछ परे एक दीवार रामभरोसे सी खडी थी, जिसकी बिना दरवाजे की चौखट मे से ढहे हुए आसरो का मलबा पडा दीख रहा था।

मैंने चोर की मानिद धीर से चौखट मे मुह डाला। दायी तरफ एक साबत आसरा दीख पडा। इसकी झुकी हुई चौखट का एक दरवाजा अधढका पडा था।

मैंने चौखट तक जाकर हल्के से आवाज दी, "मदजी आ मदजी!"

कोई जवाब नही आया।

पर जाने कैसे मुझे भरोसा हो गया कि मदजी अन्दर हैं। मैंने दरवाजे की जग खाई कडी को हल्के-से बजाया। मुह दरवाजे के करीब झाँककर आवाज लगाई, "मदजी!"

दो तीन बार पुकारने पर अन्दर से दबी दबी आवाज आई, "कुण है, बीरा?"

"मदजी, खोलो मैं सज्जन हूँ।" मैं थोडा ऊँचा बोला।

और जैसे कोई करंट दौड गया हो, पलभर मे ही दरवाजे के पल्ले चीख पडे और आसरे के अँधेरे मे मेरे सामने खडे मदजी को मैं उनकी स्थाई छबि के कोणा से पहचान गया।

अब अँधेरा पूरी तौर पर घिर आया। जैसे एक मुद्दत ही मदजी के घर का सन्नाटा घना हो गया।

"सज्जन बीरा!" मदजी कुछ पल ठहरकर बोले।

मुझे राहत मिली कि उन्होने पहचान तो लिया। इत्ते मे वे फिर बोले, 'आ बीरा अन्दर आ जा!'

"पर मदजी।' मैं बोला।

"अंधेरा है अँधेरे मे डर लगता है न?" बोलकर मदजी चौखट से बाहर निकल आये। फिर बोले, "एक बार ठहर मैं अभी उजाला करता हूँ।'

मुझे लगा कि मैं कहाँ फँस गया!

मदजी को जीता जागता देखते ही, मुझमे उनको लेकर जमी बर्फ

पलभर मे काफूर हो गई। इसकी ठौर इस माहौल से जमी अमूज समा गई।

मैं सोचने लगा, यह मदजी क्या आदमी है? अब ढहे-अब ढहे ऐसे आसरे मे निर्भय होकर कैसे बैठा रहता है? और भी सवाल उठने लगे कि पता नही किस ढेर से एक लालटेन उठाए मदजी लौट आए। अँधेरे म अनेक क्रिया-कलापो का अनुमान करता रहा। शायद उन्होने लालटेन का काँच उतारा और उसकी पुरानी कालिख अपनी धोती के छोर से छुड़ाई, फिर लालटेन के पेंदे को हिलाकर देखा कि अन्दर तेल बजता है या नही? तेल जरूर था, क्योकि उन्होने कही से दियासलाई निकाली और घिसकर बत्ती जला दी।

एक पीला उजास उस श्मशानी माहौल को उजागर करके और मनहूसियत फैलाने लगा।

मदजी ने निश्चितता से लौ को सम किया और काँच लगाकर लालटेन हाथ म लटका ली।

उजास मे मैंने मदजी को गौर से देखा। धोती सदैव की तरह मैली-कुचली और बेतरतीब लपेटी हुई, पर वैसे ही अधफटे कुर्ते की ठौर आज व नगे-बदन थ। बाहर तीखी ठण्डी हवा चल रही थी। यहाँ चाहे फूटी ही सही, दीवारो की ओट थी तब भी, ठण्ड तो आखिर ठण्ड थी।

मेरी निगाह मदजी के चेहरे पर पडकर ठहर गई। लालटेन के पीले उजास म मैंने देखा, उनके एक गाल पर सप्ताह-दस दिन पुरानी खिचडी दाढी, दूसरे पर ठौर-ठौर छूट हुए गुच्छो के बावजूद खुरची हुई। मदजी का चेहरा इस तरह बडा अजीब हो गया था। कहा जाए तो—डरावना!

"आ, अब चला आ!" कहकर मदजी ने लालटेन ऊपर को की और पहले खुद आसरे मे घुसे और फिर पलटकर मुझे रास्ता दिखाने लगे।

मैं अब भी पशोपेश मे था। मदजी के घर का सन्नाटा जैसे मेरी छाती पर चढ बैठा। मेरे पैर नही उठे। आखिर मैं पिण्ड छुड़ाने की गरज से बोला, "नही, अन्दर नही आऊँगा देरी बहुत हो चुकी।"

"क्यो?" मदजी की आवाज फिर पहले की तरह डूबने-डूबने को हुई, "अब अँधेरा कहाँ है, उजास म भी डर लगता है क्या?"

"नही, डर की तो कोई बात नही मैं तो फकत देखने आया था।" मेरे मुह से जसे बिना विचारे ही निकल पडा।

"देखने ! क्या देखने ?" मदजी ने पूछा।

"आपको इत्ते दिना स नही दखा, इसलिए ।" मेरी छाती पर बढता बोझ इस बात से कुछ हलका होता जान पडा।

मदजी फिर कुछ पूछत, इसम पहले मैंन ही पूछना मुनासिब समझा, "क्या बात हुई, मदजी कोई मांदगी (बीमारी) थी क्या ?'

'तू अन्दर तो आ पहले, बीरा बाहर खडे खडे ही सब पछ लेगा क्या ?" मदजी इतनी नरमाइ स बोल कि एक अजब सी लाचारगी का अहसास मुझे झकझोर गया।

मैं खुद को उस आसरे मे धकेलने को तैयार हो गया। लगा कि डर इस आसरे का ऊपर ढह पडने का उतना नहीं जितना कोई और है। पर और क्या ? आखिर मैंने खुद को लगभग धकेलत हुए चौखट पार की और तीन चार कदम दूर खडे मदजी के ऐन करीब जा खडा हुआ।

अब डर के साथ साथ किसी असह्य ढग की तीखी बदबू का अहसास मेरे नथुने चिचाडने लगा। आसरा खास बडा नही था, लालटन का उजास जैसे एकत्र होकर थोडा सेंजारा हा गया था। चौफेर तररावाली मली, बदरग दीवारें आगन के कच्चे पक्के का कुछ अनुमान होना मुश्किल। दीवारो की जडा के आसपास झडे हुए चूने का ढेर और ऊपर पुरानी डिजाइन वाली छत, जो कही कही स झुकी हुई या छेदयुक्त। पर सब से दुखदायी थी वह तीखी बदबू जिसके बाबत एक ही अनुमान हुआ कि मदजी जरूर रात बेरात यही कही पसाव करते रह होगे।

"बैठ !' देर तक आसरा टटोलती मेरी निगाहा न जसे ही मदजी की तरफ देखा, वे फटाक से बोल पडे। उनके हाथ क इशारे के साथ मैंने जिधर देखा, वहाँ छोटे पायो की एक खाट बिछी थी। खाट पर मैल की लोई जैसी शक्ल म एक गूदड पडा था।

मदजी ने इस बार जुबान से नही, हाथ से काम लिया और मुझे कुछ स्नेह और कुछ कठोरता से पकडकर खाट तक खीच लिया। खाट की इस पर जाकर मैं टिक गया। मदजी ने पहले से तय किसी कील पर लालटेन

लटका दी और आकर उसी खाट पर मेरे सामने बैठ गए।

"आपको ठंड नहीं लगती ?" पूछने के साथ ही मुझे याद आया कि मदजी तो गूंगे बावरे हैं और मुझे फिर बेचैनी ने घेर लिया।

"तुझे पता है, आज रात को परमी मास्टरनी क्या करेगी ?" मेरे सवाल पर जैसे उनके कान थे ही नहीं, उन्होंने बहुत कौतुकपूर्ण लहजे में खुद सवाल कर डाला।

"परमी मास्टरनी !" मेरा इस अचीते नाम पर चौंकना बेजा नहीं था।

"हाँ !" मदजी ने बड़ी अदा के साथ हामी भरी और अपने दाढ़ीवाले गाल पर हाथ रखकर मुझे घूरने लगे।

मुझे चटपट याद आया कि तीन दिन पहले परमी मास्टरनी की बूढ़ी सास की मौत कुएं में पड़ने से हुई थी। लोगों ने तरह तरह की बातें कही थीं। उनमें एक यह भी थी कि परमी मास्टरनी ने अपनी बूढ़ी सास का माल मत्ता तो पहले ही मीठी बनकर हथिया लिया था। अब डोकरी उसके लिए बोझ थी और वह उसको मान सम्मान से तो क्या, वक्त से भी रोटी नहीं देती थी। कहते हैं, डोकरी मरी उस दिन तो परमी मास्टरनी स्कूल जाते वक्त उस पर हाथ भी उठा गई थी। डोकरी के लाडले ने भी बराबर अपनी घरवाली को चुप रहकर समर्थन दिए रखा था। दोपहर में बेटा बहू बाहर थे, तो डोकरी गांव के किनारे सूखे और सूने पड़े कुएं में जा पड़ी थी, उसकी जूतियाँ पास पड़ी देखकर किसी राहगीर ने थाने में इत्तला कर दी, तो थानेवालों ने ही लाश खिंचवाई। सभी कुछ हुआ होगा, पर मदजी को इस वक्त परमी मास्टरनी कैसे याद आ रही है।

"परमी मास्टरनी आज अपनी सास का औसर करेगी ।" अचानक मदजी झल्लाए से मुंह को विरूपित करते बोले।

'औसर ? औसर तो तेरहवें दिन होता है आज तो सिर्फ तीसरा दिन है।"

"हां, पर परमी मास्टरनी को आज ही औसर करना है, आज ही रात को ।" मदजी उसी तरह बोले और कुछ देर चुप खींच गए। पर

अगले ही क्षणो म उनकी गदन साँप के फन की तरह ऊपर उठी और जिस गाल पर दाढी खुरची हुई थी, उस पर जबडे की हड्डी की सख्ती उभरने लगी।

मैं समझने लगा कि मदजी मे अब पीपल का प्रेत आज यही आकर करिश्मा दिखाएगा। वही हुआ। मैं अगली साँस ले पाया कि नही और मदजी बठे बठे ही उछलकर खडे हो गए। उनके पेट का जोर गले मे समा चुका था और वे बोलने लगे, "थानेवालो की क्या वह डोकरी माँ लगती थी ? मा ? निकम्मे कही के! डोकरी कुए म पडकर नही, भूख से मरी है। यह भूख एक दिन इन सबको खाएगी इस बेटे को, इस बहू को और इन थानेवालो को, जिन्होंने लाश पर भी सौदा किया उसकी लाश उनको सजधज से जलाकर नाम कमाने को दे दी। जिन्होंने भूखा मार मारकर उसे लाश बनाया क्यो दे दी ? क्योकि परमली मास्टरनी का जीवन थानेदार के चित्त चढ गया वा रे जीवन मान के डील का पोस्ट मार्टम म उबार कर उसकी मोक्ष करवा दी।"

एक एक वाक्य बोलकर मदजी मेरे सामने हाथ झटकते जा रहे थे। जैसे इस सारे दुष्चक्र का कसूरवार मैं ही हूँ और वे मुझे लानत भेज रहे हैं। वे बुरी तरह हाफ रहे थे और लालटेन के उजास म उनके नगे बदन पर पसीने के धारे चमकने लगे थे। उनके चौडे ललाट पर उनके खिचडी बाल छितरा गए थे और विकरालता किसी चक्रवात की तरह वहाँ चक्कर काटने लगी थी।

अजीब किस्म की एक घिन मुझे अन्दर ही अन्दर मथने लगी थी। पर मुझे साफ लग रहा था कि इस बार इस घिन का कारण सिर्फ पसीने की तीखी बदबू नही थी, बल्कि परमी मास्टरनी, उसका पति और थाने वाला की मदजी की अदालत मे अशरीरी उपस्थिति थी। मुझे ध्यान आया कि डोकरी वाली दुघटना से थानेदार की कैसी भली तस्वीर उभर रही थी। लोगो ने उसके लिए कहा कि उसने परमी मास्टरनी को बेटी कहकर पुकारा और सिर पर हाथ फेरकर दोगा पति पत्नि को कचहरी के चक्करो से बरी कर दिया। लोगो ने तो यहाँ तक कहा कि डोकरी के गले म तोला भर सोने की जंजीर थी वह भी थानेदार ने परमी मास्टरनी का

लौटा दी। आखिर उसे बेटी कहकर उसका धन कैसे रख सकता था।

एक क्षण मुझे लगा कि मदजी की सारी बात उनके घुटने पर गढी हुई है। कहीं ऐसा भी होता है! सोचकर मैंने उनकी तरफ देखा। उनकी आखो मे अब भी खिचाव था और चहरे की विकरालता म रत्ती-भर कमी नही आई थी। उनको झूठा मानने की मेरी मशा रेत के धारे पर मडे आखरो की मानिद एक ही झोंके म मिट गयी।

मैं मदजी क अगले कदम का इन्तजार करने लगा। सोचा, अब वे सदव की तरह पत्थर उठान को नीचे झुकेंगे और फिर पैर पटकते हुए किसी अचीती दिशा मे बाहर हो जाएँगे।

पर आज ऐसा नही हुआ।

मदजी के दांत किटकिटाते सुन पडे और वे इतने ही बोले, "उसकी बांतडियाँ अगले पहिए से चिपकी पडी थी, पर नही, इन थानेवालों ने खुद ले जाकर पिछले पहिए को खून से रग डाला और अगला पहिया साफ हो गया साफ।" मदजी की घिग्घी बंध गई जैसे चेहरे पर दुख, आतक और क्रोध की आडी तिरछी लकीरें दीखने लगी।

मैं उठकर खडा हुआ। पर और करीब जाने की जरूरत नही पडी। मदजी का मुह झाग उगलने लगा और वे बेचैत से अपनी खाट की आर खुद ही लपक पडे।

बाहर शायद तीखी-ठडी हवा की रफ्तार तेज हो रही थी। कही पडोस मे कुछ गिरने जैसी आवाज आई। चौंकते ही ठड और एक अजनबी गुस्से से भरी मुट्ठिया और दांत भिचने लगे।

मदजी अपनी झोलीनुमा खाट मे औधे मुह पडे हुए सिसक रहे थे!

उस रात मैं घर नही पहुँचा।

मदजी देर तक खाट मे उल्टे पडे ऐंठते रहे और मैं उनके पास बैठा-बैठा उनकी पीठ सहलाता रहा। कोई दो घटे तो लग ही होंगे, जब जाकर मदजी की देह ढीली पडने लगी।

य उठ बैठे।

सामने म नायब सब साम हो रहा था। कुछ देर भर झाकर इसकी सी रूपा लगी। जाते हुए उजाले न मैं। मन्जी की आंखों को झांकर रहा। जैसे अपने ग जाने के बाद की छायी हुई गम हो, वहां मुझे एक सूनी सूनी छाया मंडराती दिखाई दी।

आखिर सामने बुझ गई।

'सज्जन!" अंधेरे म मदजी के बोल चमके, जैसे।

"हां, मन्ना क्या हुआ आपको? अब कुछ आराम है न!"

'हां मदजी ने हामी भर कहा।

मेरे सामने, मेरे आने पर शुरू हुआ मदजी का उत्साह और वह बावरेपन से मुक्त व्यवहार फिर प्रकट होने लगा। किसी के अन के बाद याद आय। परसी मास्टरनी की बात सुनाते-सुनाते य किस पहिए के खून लगा की ले बैठे थे? पर मुझे यह डर सताने लगा कि यह पूछते ही मदजी पर फिर से प्रेत की सवारी न हो जाए!

तभी मदजी बोल पड़े, "सज्जन तेरा सोचना सातह आने है मैं बावरा नहीं हूँ रे!'

"मैंने आपको कभी बावरा नहीं जाना।"

"मुझे पता है, बीरा! पर अब यह बात बहुत पुरानी हो गई। समूची दुनिया मुझे बावरा जानकर ही चलती है मेरे पास क्या सफाई कि मैं बावरा नहीं!"

'कस?" मैंने बसन्ती से पूछा।

"सुनेगा?" मदजी ने अनुमान से हाथ पसारे और मेरे कंधा पर रख कर पूछा, 'तुझे देर तो नहीं होगी?"

'देर तो जो होनी थी, हो ली अब नहीं होगी।"

आसरे म अंधेरा ठसाठस भरा था। उस तीखी बदबू का शायद मेरी नाक अब बर्दाश्त कर चुकी थी। अब इतनी तिलमिलाहट नहीं थी।

मदजी ने मेरे कंधो से हाथ हटाये और बोलने लगे।

'तब हिंदुस्तान पाकिस्तान का बँटवारा नहीं हुआ था। पश्चिमी बंगाल की सीमा से लगे हुए पाकिस्तान के किसी मुकाम मे मेरे बापू का

ठाडा कारबार था। मेरी अवस्था तुम्हारे जित्ती ई, कोई अठारह बीस बरस हाती। उमसे ही पता नही कितना पहले का यह घर बना हुआ है खैर, हम तीन भाई थे। कारबार सारा हिस्सेदारी मे था। सबसे बडा धन्धा पाट (जूट) का होना। गददी गोतो के साथ साथ एक विशाल गोदाम था, जहा सैकडो मजदूर पाट की छँटाई, सफाई और गाँठें बाधने का काम दिन-रात करते। उन मजदूरो मे मैं ही था—एक अलगा नाम का मजदूर समझा कि मेरे बावरेपन की कथा इसी नाम से शुरू होती है।" कहकर मदजी थमे।

"कस?" मेरी उत्सुकता परवान चढन लगी।

"सुने जाओ सब कुछ बता दूगा।" मदजी मिठास और धीरज से बोलन लगे "तो गोदाम मे ज्यादातर मजदूर बिहारी थे। अलगा भी इन्ही म से एक था। सब मजदूर सप्ताह के सप्ताह अपनी मजदूरी लेते और अपने खचा को छोड पैसे जमा करते। दो तीन महीनो मे ये पैसे डाक से अपन बाल-बच्चो को भेजते। एक दिन शाम के वक्त मुझे अकेला देखकर अलगा डरूँ डरूँ होना मेरे पास आया। कहा, अलगा कैसन खबर है?' मैंन मजाक मे पूछा।

'खबर का बताई बाबू आपस एकठू बात पूछना रहा। वह सरक कर मेरे करीब आया और धीरे-से बोला।

"कहा।" मैंन कहा।

वह देर तक जैसे कहने के लिए बोल घडता रहा और जैसे बहुत कठिनाई से ही बोल सका, 'बाबू, डाक से घर भेजा पइसा कितना देर मे घर पहुँचता जाता है?'

'हमार घर ' कहकर उसन बिहार का एक जिला, गाँव और थाना आदि सब बता दिये।

"दस प द्रह दिन म और क्या?" मैंने उसे उन दिनो की डाक की रफ्तार का अनुमान लगाकर बता दिया।

मेरी बात सुनकर वह सुस्त पडने लगा। फिर लाचारी से बोला, 'हमरा तो चार महीन स भी नही पहुँचा।'

"नही पहुँचा?" मैं बोला, 'तुमका कमे पता लगा रसीद नही

वे उठ बठे।

लालटन म शायद तेल खत्म हो रहा था। कुछ देर झप झपाकर उसकी लौ डूबने लगी। जाते हुए उजास म मैंने मदजी की आखो को झाकर दखा। जैसे अघड के जाने के बाद की छायी हुई गद हो, वहाँ मुझे एक सूनी सूनी छाया मँडराती दिखाई दी।

आखिर लालटेन बुझ गई।

'सज्जन!" अँधरे म मदजी के बोल चमके, जैसे।

"हाँ, मदजी क्या हुआ आपको? अब कुछ आराम है न!"

"हाँ ' मदजी ने इतना भर कहा।

मेरे सामन, मेरे आने पर शुरू हुआ मदजी का उत्साह और वह बावरेपन से मुक्त व्यवहार फिर प्रकट होने लगा। किस्से के अ त के बोल याद आय। परमी मास्टरनी की बात सुनाते सुनाते वे किस पहिए के खून लगने की ले बठे थे? पर मुझे यह डर सताने लगा कि यह पूछते ही मदजी पर फिर से प्रेत की सवारी न हो जाए!

तभी मदजी बोल पडे, "सज्जन तेरा सोचना सालह आने है मैं बावरा नही हूँ रे!'

'मैंने आपको कभी बावरा नही जाना।'

'मुझे पता है, बीरा! पर अब यह बात बहुत पुरानी हो गई। समूची दुनिया मुझे बावरा जानकर ही चलती है मेरे पास क्या सफाई कि मैं बावरा नही!"

"कसे?' मैंने बेसब्री से पूछा।

"सुनेगा?" मदजी ने अनुमान से हाथ पसारे और मेरे कधो पर रख कर पूछा, 'तुझे देर तो नही होगी?"

'दर ता जो होनी थी, हो ली अब नही होगी।"

बासरे म अँधेरा ठमाठम भरा था। उस तीखी बदबू को शायद मेरी नाक अब बर्दाश्त कर चुकी थी। अब इतनी तिलमिलाहट नही थी।

मदजी ने मरे कधा से हाथ हटाये और बोलने लगे।

"तब हिन्दुस्तान पाकिस्तान का बँटवारा नही हुआ था। पश्चिमी बँगाल की सीमा स लगे हुए पाकिस्तान के किसी मुकाम म मेरे बापू का

ठाडा कारबार था। मेरी अवस्था तुम्हारे जित्ती ई, कोई अठारह बीस बरस होगी। उमस ही पता नही कितना पहले का यह घर बना हुआ है खैर, हम तीन भाई थे। कारबार सारा हिस्सेदारी मे था। सबसे बडा धन्धा पाट (जूट) का होना। गद्दी गोलो के साथ साथ एक विशाल गोदाम था, जहाँ सैकडा मजदूर पाट की छँटाई, सफाई और गाठें बाँधने का काम दिन रात करते। उन मजदूरो म मैं ही था—एक अलगा नाम का मजदूर समझो कि मेरे बावरेपन की कथा इसी नाम से शुरू होती है।" कहकर मदजी थमे।

"कसे?" मेरी उत्सुकता परवान चढने लगी।

"सुन जाओ सब कुछ बता दूगा।" मदजी मिठास और धीरज से बोलने लगे "तो गोदाम मे ज्यादातर मजदूर बिहारी थे। अलगा भी इन्ही म से एक था। सब मजदूर सप्ताह के सप्ताह अपनी मजदूरी लेते और अपने खर्चों का छोड पैसे जमा करते। दो तीन महीनो मे ये पैसे डाक से अपने बाल-बच्चो को भेजते। एक दिन शाम के वक्त मुझे अकेला देख कर अलगा डरू डरू होना मेरे पास आया। 'कहा, अलगा कसन खबर है?' मैंन मजाक म पूछा।

'खबर का बताई बाबू आपम एकठू बात पूछना रहा।' वह सरक कर मेरे करीब आया और धीरे से बोला।

"कहा।" मन कहा।

वह देर तक जैसे कहने के लिए बोल घडता रहा और जसे बहुत कठिनाई मे ही बोल सका, 'बाबू, डाक से घर भेजा पइसा कितना देर मे घर पहुँचता जाता है?'

'हमार घर' कहकर उसन बिहार का एक जिला, गाँव और थाना आदि सब बता दिये।

"दस प द्रह दिन म और क्या?" मैंन उसे उन दिनो की डाक की रफ्तार का अनुमान लगाकर बता दिया।

मेरी बात सुनकर वह सुस्त पडने लगा। फिर लाचारी से बोला, 'हमरा तो चार महीने से भी नही पहुँचा।'

"नही पहुँचा?" मैं बोला, 'तुमका कसे पता लगा रसीद नही

आया ?'

'रसीद के तो कुनो बात नही, हमरे गाव से लोग आए हैं, वही कहिन हमको।' उसने कहा।

'किसके हाथ से भिजवाया ?' वह कई बार मुझसे भी भिजवाता था, इसलिए मैंने पूछा।

उसकी लाचारगी गहराने लगी। जसे होठा पर किसी ने सिला रख दी हो, होठ हिला हिलाकर रह गया। मेरे दिमाग मे एक नाम खुद चला आया। मैंने पूछा, 'छाटू बाबू से ?'

'जी।' उसने डरे सहमे हामल भरी।

मुझसे छोटे वाले भाई को सब 'छोटा बाबू' कहते। धुधली धुधली एक कल्पना मैं करने लगा। छोटा बेजा खर्चीला और अभी से एय्याशी के रास्ते चलने वाला हो गया था। पर पसे पूरे कहाँ से ? मेरे बापू जी से एक आना भर चमडी उतरवानी आसान, बजाय एक आना नगद ल सकन के।

मैंने अलगे को तसल्ली दी और भेज दिया। पर इसकी तकलीफ मेरे कहीं गहरे मे उतरकर रह गई। एक ता इन मजदूरो को यूँ ही कम मजदूरी मिलती और फिर वे पेट काट काटकर अपने बाल बच्चो का पट भरन यह पैसा भेजते। जबकि हमारे यहाँ अलग की सप्ताह भर की *मजदूरी जित्ते पैसो के तो पान तामूल ही आ जात।"*

लगा, मदजी ने खाट पर अपने को हरकत दी है। पुरानी ईमें चर चू करनी चीख पडी जैसे। मैं उनकी ओर बोलने का दिलचस्पी से इतजार करने लगा।

"यह पहला अन्याय था, जो सीधा मरे सामने आ खडा हुआ और मैं भी इसके सामने डटकर खडा हो गया। मदजी ने जैसे विश्राम करना ठीक समझा हो, कुछ देर थमकर फिर अपनी लीक पर चले आए, "छोट को बहुत बुरा लगा, पर आखिकार मैंने उससे 'हाँ' करवा ली। अलग के पैसे गददी से लेकर भिजवा दिए और मैं यहाँ, कुछ दिन के लिए देश चला आया। यहाँ इन्ही दिनो मेरा ब्याह हुआ।

' ब्याह के बाद मैं फिर गया, तो अलगा मिला, 'बाबू, अब हम सब

झमेला ही मिटा दिए हैं जनाना को यही ले आये हैं।" मैंने कुछ नही पूछा, तो भी वह बताता गया, "और तो कोई रहे नही एक हमरा जनाना ई रहा, सो हम उसको यहीन ले आये। अेकठू कोठरी ले लिए हैं, वहीं बासा कर लिये हैं।"

"मैंने सुनकर सोचा कि अच्छा ही हुआ और इस अच्छे का चलत शायद एक बरस तो बीत ही गया होगा कि एक दिन किसी से सुना, अलगे ने अपनी जनाना को लात मारकर घर से निकाल दिया है और खुद बावरा सा मारा-मारा फिरता है। मेरे कुछ समझ मे नही आया। फिर मैंने देखा, यह उसकी अपनी घरेलू बात है और वह हमारा मजदूर नौकर है, कही फालतू पचायती न मानी जाए सो मैं बीच मे ही नही पडा।"

मदजी सयत किस्सा गो की तरह बोल रहे थे। मैं अचभित हुआ अधेरे मैं उनकी आवाज की दिशा मे ताक रहा था कि क्या ये वही मदजी हैं, जिनको गाँव के छोरे छोकरे कुता खीचकर चिढा देते हैं ?

"पर बात यही खत्म नहीं हुई, बीरा आदमी का खून पीने की हमारे घर की पीढियो पुरानी रीत थी। मरी समझ म आ गया कि हमारे जमे दूसरो की मेहनत से अपनी तिजोरियाँ भरने के धधे म लगे हुए सब परदेश कमानेवालो की यही रीत है।

"एक ऐसे ही घर मे जनमकर मैं इन खून पसीना एक करनवालो की दुनिया मे कसे आ गया, यह अचभे की बात है। मैं शुरू से ही गोदाम का काम देखने लगा था। पता नही क्या, छुटपन से ही इन मजदूरो के बीच मेरा मन ज्यादा रमता था।

"य मजदूर गोदाम मे चौफेर पसरी पाट (जूट) के बीच, उसकी सीलन से उठती बदबू और उमस की परवाह किय बिना, देह पर पाट के फफू* चिपकाये अपने पट का खडडा भरन का लगे रहत। तब भी इस खडड मे क्या डाल पाते ! एक मुटठी भर माटा चावल और च्यूटी भर नमक ।

"मुझे उनका काम करते, मजाक करते या गोदाम मे ही इन के चूल्हे पर अपन मोटे चावल सिकोते दखकर एक अजीब सुख मिलता। बापू-

जी छठे उमाम गोदाम का चक्कर लगाते, वरना इन मजदूरों को साफकर छाटी वाली और गांठा म बंधी पाट के गद्दी पर बैठे बठे घाटे मुनाफे क सौदे करन। सप्ताह के एक दिन कन-बड लगाकर वही बैठे-बैठे इन मजदूरों की मजदूरी फेंक देते। मेरे बालक मन म यह सवाल जान अनजाने उठता ही रहता कि जिनके दम से हमारी देश परदेश की हवेलियाँ, खेत जमीन और ठाठ बाठ हैं वे कब तक इस माटे चावल के साथ नमक फांक फांककर पेट भरेंगे? खैर, यह तो पता नहीं कितना पुराना ढर्रा था यह, पर अलग के साथ जो हुई उसने मुझे झकझोर के रख दिया है।"

मदजी जसे परतें उधेड रहे थे। मुझे एक एक परत के लिए बेसब्री बढती जा रही थी। इस बार मदजी कुछ ज्यादा लम्बी चुप्पी लगा गये, तो मैंने कुरेदा, "अलग के साथ आखिर ऐसा क्या हो गया था?"

"बताता हूँ, बीरा बताता हूँ न!" एक रात को मैं गोदाम से दिन भर का कामकाज दर्ज करने के बाद गद्दी जा रहा था कि अलगा मुझे मिला। उसके मुह से ताडी का भभका आ रहा था। ताडी सभी मजदूर पीते थे, पर ऊन फेल कभी नहीं होते थे। पर अलगे का आज का ढग कुछ अलग था। वह अपनी अक्ल से तो शायद मेरी ओर ही आ रहा था, पर उसके पैर उसके नियत्रण मे नहीं थे।

'पिछले कई दिनों से वह गोदाम भी नहीं आ रहा था। पर उसके साथी मजदूरों ने भी कोई साफ कारण इसका मुझे नहीं बताया था। सिवाय इसके कि अलग ने अपनी घरवाली को मारा पीटा और घर से निकाल दिया। दरअसल मजदूर अपने हालात के बोझ से ऐसे दबे हुए थे कि जिसके पास पैसा होता, उसे भगवान ही समझते थे। उनके मन में यह बात पता नहीं कितने अर्से से बैठी हुई थी कि यह सेठ बाबू लोग भगवान समान ही हैं जो उनका पेट भरते हैं इसके चलते वे इन बाबुओं के साथ बहुत सम्मान और हीनता दिखाते हुए पेश आते। अपने हाथों से जो लाखमोली मेहनत वे करते, उसका मोल तो पहले ही हमारी तिजोरियों में कैद रहता, पर इसके साथ साथ उनकी आत्मा भी गिरफ्तार रहती।

"तो अलगे के दुःख की सच्ची बात, इसी आत्महीनता के कारण मुझसे छिपाई गई। और यही अलगा, ताड़ी के नशे के कारण थोड़ा आजाद होकर मुझसे टकरा गया

'ऐ बाबू राम राम !' उसके बोल हिचकियों में अटक अटककर आ रहे थे।

"मैंने राम रामी का जवाब दिया और उसे गौर से देखने लगा। मुझे पूरे सही अलगा सबसे जुदा और कुछ ज्यादा प्रिय लगता था। वह कुछ देर नशे के कारण लड़खड़ाता रहा फिर बोला

'ठीक नहीं रहा, बाबू ठीक।'

'मैं कुछ समझ नहीं पाया। थोड़ा डपटकर मैंने पूछा, 'ए अलगा, क्या ठीक नहीं रहा रे! ताड़ी बेसी पिया है क्या?'

'अरे नहीं बाबू ई स्साला ताड़ी से क्या ठीक तो वह नहीं जन तुमरा बड़ा भाई किया हमर साथ।'

'अलगा!' मैं इस बार जोर से गरज पड़ा, 'जरा देखकर बोलो तो, क्या हुआ?'

'हुआ क्या, बूझना है? उसकी आवाज में ताड़ी के साथ साथ रीस की बहक भी शामिल हो गई, 'हमरा जनाना का खराब करता है स्साला और क्या? हम उसी के वास्ते तो लाया रहा न! ई बाबू लोग अपना जोरू जनाना को बड़का दो तल्ला से नीचे ई झाँकने नहीं देता और गरीब आदमी का जनाना पत्तन का माफिक समझता है चाट लिया या फेंक दिया!'

'अलगा? होश तो है न!' मैंने इधर-उधर देखा, कहीं कोई सुनने-वाला तो नहीं है कहीं! उस मुकाम ही नहीं, बल्कि आस पास के मुकामों तक पसरा इन 'बाबू लोगन' का एक 'समाज' था। मैं उसी समाज में अपने बड़े भाई की, जिसका बखान अलगा कर रहा था, इज्जत की फिक्र करने लगा।

'बहुत होश आ गया, बाबू!' अलगा फिर बोला, 'लेकिन ई होश साला आया देर से तुम हमरा पैसा मारा, सहन किया लेकिन अब हमरा जनाना का मारो, नहीं सहन करेंगे।' कहकर अलगा खासे ताव

मे आ गया और गर्दन ऊँची कर ली, पर तभी उसके पैर जवाब दे गये। वह बेतरह लडखडाया और धराशायी हो गया।

तब तक दो दूसरे मजदूर आ गए। मैंने उन्हें अलगे को ले जाकर गोदाम में सुलाने का जिम्मा सौंपा और गद्दी चला आया। वहाँ आकर देखा कि मेरा वही बडा भाई सोने से पहले नित-नेम से करनेवाली अपनी प्रार्थना कर रहा है, जिसको लेकर अलगा अभी सब कुछ कह रहा था। मुझे रीस तो ऐसी उठी कि पसेरी उठाकर उसका सिर तोड दूं पर सोचकर रह गया कि अलगा झूठा न हो। वह नशे मे था कहीं उसे वहम ही हो गया हो! पर मैंने निश्चय कर लिया कि इस बात की खोज खबर जरूर करके रहूँगा।"

और मदजी फिर विश्राम लेने लगे।

"नीद तो नही आती, सज्जन?" इस बार मदजी कुछ देर बाद खुद बखुद पूछ बैठे।

"ऊँ हूँ नीद कहाँ?" मैंने उत्तर देकर कहा, "मैं तो पूरे रस से सुन रहा हूँ आपको सुनता हो या नही, मैं बराबर 'हुँकारा' भी तो देता हूँ।"

"देता होगा पर बीरा, तेरे यह धडका तो होगा कि कहा यह आसरा ऊपर न आ पडे।"

"यह धडका तो कभी का मिट गया।"

"तो फिर सुने जा" मदजी बोले

"दूसरे दिन मैं गोदाम गया और वहा से एक मजदूर चुन लिया। काम का बहाना देकर उसे साथ ले लिया। बाजार के पीछे कुछ दूर हट कर एक नदी थी। उसके बाँध पर सडक बनी हुई थी, जो सुबह शाम बाबू लोगो के टहलने के काम आती। दिन मे बाँध की सडक प्राय सूनी रहती। मैं इस मजदूर को लेकर इसी पर निकल पडा।

"कुछ देर तो वह जानते बूझते भोला बनता रहा, फिर सब कुछ बता दिया। उसने ही बताया कि अलगे की घरवाली बहुत सुरूप और उमर में जवान है। अलगे और उसकी उमर में बहुत फर्क है। वजह यह कि अलगे के घर की तरफ यह रीत है कि मर्द के पास जब-तक अपनी जमीन नही हो,

कोई औरत उससे ब्याह नही करती। अलगे के माँ-बाप उसे छोटा छोडकर ही भूख से मर गये थे। उमर का बडा हिस्सा मजूरी करके उसने गाँव मे थोडी-सी जमीन ली, तब जाकर उसका ब्याह हो सका। ब्याह के बाद अलगे की घरवाली की कोख से एक बच्चा भी जन्मा था। पर अलगा उसे देखने अपने देश लौटनेवाला था कि उसकी मौत की खबर भी आ गई।

"अलगा ज्यादातर तो मजदूरी के पीछे अपनी घरवाली से इत्ती दूर ही रहा। इस बार जैसे-तैसे करके वह उसे यहा ले आया था और एक कोठरी भाडे लेकर बासा-बाडी कर लिया था।

"अलगे की सारी हकीकत बताकर उसने यह बताया कि अलगे की सुरूप घरवाली उसके लिए कभी-कभी 'भात' पहुँचाने गोदाम आती थी। यही उसे मेरे बडे भाई ने देख लिया होगा। उसने अलगे की घरवाली का हुलिया बताया, तो कसे-कसे बदन की एक साँवली-सी औरत मेरे आगे-आगे घूमने लगी। शायद गोदाम मे ही कभी मैंने भी उसे देखा होगा।

"खैर, हुआ यह कि अलगे की घरवाली का गढा हुआ बदन मेरे बडे भाई को अपनी नरम नरम, हाथ लगने से मैली होने जैसी पीले रग की बबुआइन से ज्यादा मन माफिक आ गया होगा। उसका असर यह हुआ कि वे अलगे पर बेजरूरत मेहरबान हो गए और गोदाम के उनके चक्कर बढ गये। अलगे को वक्त बेवक्त इनाम इकराम भी देने लगे। भोला-भाला अलगा इस इनाम से मदमस्त होकर रह गया। दूसरी तरफ, एक मुह लगे मजदूर के माफत अलगे की घरवाली तक अपनी इच्छा भी पहुँचा दी। एक बाबू का ऐसा प्रस्ताव पता नही कोई लडाई उसके जी मे छिडी कि नही, पर अभाव मे बढी उसकी जवानी लोक-लाज और धर्म-मरजाद को लाँघकर 'बबुआइन' होने के बहकावे मे आ गई तो कौन बडी बात।

"कुछ दो चार और मजदूरो के भी वहाँ बासा-बाडी थे। उनमे तो वह पख लगाकर ऊँची हो ही गई। गोदाम मे आठ दस मजदूर रहते खाते-सोते भी थे उनको कई इल्जाम लगाकर बडे भाई ने दूसरे ठिकाने के लिए मजबूर कर डाला। और गोदाम मे ही पता नहीं कब, कैसे किस-किसकी आँखो मे धूल झोंककर, पाट (जूट) की गाँठो की ओट मे, अलगे

की घरवाली से अपनी साध पूरते रहे।

"और अचानक ही किसी मजदूर ने देख लिया, और चुपचाप चला गया। उससे अलगे को पता लगा, तो उसने घरवाली को मार पीटकर घर से निकाल दिया। पर अपने भगवान जैसे बाबू लोगों पर वह यह सही इलजाम भी लगाते हुए झिझक रहा था। ना ही कोई दूसरा मजदूर इसका जिक्र कर बाबुओं को नाराज करना चाहता था।

"दूसरी गोदामों के मजदूरों को भी पता लगा होगा। पर उनके बाबू लोग भी उसी समाज के थे। इन बाबू लोगों के दबदबे के चलते वे भी खुलकर नहीं बोल सकते।

"उसने यह भी बताया कि अलगे की घरवाली कुछ दिन इधर उधर भटकती फिरी फिर यहाँ के एक मुसलमान के घर में रहने लगी। आखिर अलगे के सब्र का बाँध टूट गया और ताड़ी के जोर से उसने सब कुछ मेरे आगे उगल दिया। बात सोलह आने खरी है, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं रहा। क्योंकि मेरे इस बड़े भाई की लाग पहले से ही ढीली रही हुई है, यह मैं जानता था। एक बार उनकी फजीहत उनका यह बाबू लोगों का समाज ही करने पर उतर आया था, क्योंकि एक बबुआइन से चक्कर था, तब बापूजी ने ही बात संभाली थी।"

"फिर?" मदजी की चुप्पी मुझे बेतरह अखरने लगी और मैं उतावला सा बोला।

"फिर मैंने अलगे के लिए गाय की माँग की। अपने बापूजी से मैंने कहा कि इस सारी लीला का हर्जाना अलगे को देना पड़ेगा। मेरे भोलेपन पर वे हँसे 'हर्जाना? कौन लगा हर्जाना?'

"अलगा!" मैंने कहा।

"उसके साथ बुरी हुई है, यह तो समझ में आता है पर ऐसा क्या हो अलगे हुआ और क्या उसकी घरवाली जिसका हर्जाना भरना पड़े?" बापूजी मसखरी करते से बोले।

"वो थोड़े ही कहता है हर्जाने को। यह तो मैं कह रहा हूँ हमें उसको हर्जाना देना चाहिए उसकी घरवाली उसकी नहीं रही, दुःख के कारण वह मजदूरी नहीं करता और मारा मारा फिरता है कसूर किसका है?

कसूर है आपके सपूत का !" मैंने उनको समझाना चाहा।

"बापूजी कुछ देर अपनी आदत मुताबिक मुह चलाते रहे, जस बात उनके मुह म हो और वे उसका जायका ले रहे हो। और फिर बोले 'वो तेरा बडा भाई है। खबरदार, जो उसके खिलाफत म किसी का पक्ष लिया तो। हाँ, ता बुरी को बुरी कहगे उसको बरज दूगा मैं पर आखी उमर अपने समय से पनने वाले को हजाना देना पडे, ता फिर तो खा लिया कमाकर !'

"बापूजी के बोल विष बुझे तीर से गडे मुझे। अपना बेटा इस बदी के साथ भी अनमाल और वह रत समान सिफ इसलिए कि वह उनके परा तले आया हुआ है। मुझे अपने और अपने बापूजी के बीच म एक चौडी खाई इसी पल साफ दीखन लगी।

'फिर भी मैंने पीछा नही छोडा उनका। बोला, "फिर तीन बरस पहले हजार रुपये की थैली के बदले इसी भाई की इज्जत साबुत बचाकर क्या लाए ?"

'वो इज्जत अगर जाती तो समाज मे जाती अपने समाज म । बापूजी ने आँखें तरेरी, "वो मेरा बटा है, मैं जीत जी उसकी अपने समाज म हेटी कैसे होने देता ?'

'और यह समाज मे नहा है, क्या ? सब मजदूरो को पता है। वो बोलत नहीं तभी तक ठीक है। बोलन लगे तो ?'

'समाज समाज मे यही तो फर्क होता है,' वे मुझे समझाने पर उतर आए जैस, ये कह भी देंगे तो इनके आपस के सिवाय गौर कौन करगा ? कौन मानेगा कि एक बाबू एक गदी सी मजदूरनी क लिए अपना चरित्तर खराब करे कौन मानेगा कि अलग की घरवाली ऐसी अप्सरा है, जिस पर कोई बाबू न्यौछावर हो सके ?'

'मैंने देख लिया कि इन तिलो म तेल नही। पर आखिरी हथियार चलाने से नही चूका, 'अगर सब मजदूर एकठ हो जाएँ तो ?'

'हा भले ही।' बापूजी निश्चिततापूर्वक बोले, 'पहले भी कभी हुए हैं क्या ? रोज रात का टके टके की ताडी पीकर कौन लडेगा ?'

'इस बार मैं निरुत्तर होकर रह गया।'

'वे फिर समझाने लगे, 'तुम्हें अभी बहुत वक्त लगेगा—उष्णा आतप और वनास्पति घावला की किस्मा मे फर्क कैसे रखें, ये बात सीखने की है, यही सीख। ये हक कानून की बातें यहाँ से सीख लीं ?'

भाई को इसका फल भुगतना पडेगा।' उनकी सीखो से तग आकर मैंने कह ही दिया।

"और उनका रहा-सहा धीरज भी उनमे छूट गया। शायद मेरी आवाज की दृढ़ता से वे खीझ गये थे। एकदम बाँस फटा हो जैसे, 'सुन ले कान खोलकर, वह तेरा सगा माँ पट भाई है। तेरा धर्म है कि तू उसकी इज्जत को बचाए। उल्टे तू कुछ अवली चाल चलेगा, तो उसको नुकसान हो न हो, तेरा नुकसान जरूर कर दूगा, मैं।'

"मैंने पलटकर बापूजी का चेहरा देखा। मैं उनका सकेत साफ समझ गया था। वे मुझे इस कारबार, जमीन जायदाद और पसे टके की हिस्सेदारी से परे रख देने की धमकी दे रहे थे। इस बहस को टालकर मैंने एक बार फिर अनगे की वकालत की, 'देखो, उस आदमी को अपनी वजह से कितना सताप हुआ है। इस सताप की कोई कीमत नहीं दी जा सकती, पर न्याय यही है कि हम उसको हर्जाना देवें और उसका घर बसाने के लिए कुछ करें आखिर बरमा से उसका हमारा सबध है।'

सबध ?' बापूजी गरमे, अरे निकम्मे ! उसका अपना सबध ! जा तू ही कर उसके साथ सबध। गोदाम म सौ सौ मजदूरो पर अभी हुक्म चलाया है न ! एक दिन सुआ हाथ मे लेकर गाँठें सीकर देख—पाच तरह की तरकारी के साथ खाया है न ! नमक को दाल की जगह फाँककर देख एक बार। तेरा डौल ऐसा ही लगता है। तू ये ही करेगा। जा, मर जा मेरे मुह आगे से हट जा !' ,

मैं विश्राम लेने को थमे मदजी के बोलने की बाट जोहता बैठा था। पर इस बार देर तक अधेरे के साथ साथ सन्नाटा भी हम दोनो के बीच बठा रहा।

खुले दरवाजे म से, शुक्ल पक्ष की किसी पिछली तिथि के देर से उगनेवाले चद्रमा का उजास, छिटकने लगा था। देर से अँधेरा पचा चुकी आँखें इस थाडे उजास से ही सब कुछ देखने को सक्षम हो गइ।

ठड इस रात के साथ साथ गहराती गई होगी, ऐसा ही लगा जब रात की गहराई से निकलकर पेशाब करने उठा।

'सज्जन !" मेरी हलचल सूघ कर मदजी चौके।

"नही, जा नही रहा हूँ थोडा फारिग होकर आ रहा हूँ।' मैंने मदजी को आश्वस्त किया।

बाहर कोने कोने पर चादनी छिटकी पडी थी। मलबे के ढेर, अधढही दीवारें और पैरो मे उलझती उगी हुई अलसेट सब कुछ चादनी की चासनी से तर बतर! रतजगे के कारण साधारणत होनेवाली थकान की ठौर एक अनचीन्हा उत्साह समा गया मुझमे जसे किसी छिपे हुए खजाने तक पहुँचने मे अब थोडा ही फासला बच रहा हो!

मैं लौटकर खाट पर फिर बैठा, तो उसकी ईसें नाराजगी सी प्रकट करती चर चू बज उठी। मैं इससे बेपरवाह होकर बैठा और सोचा, चाहे जो हो यह मदजी का ढमढेर है बहुत गरम। ऐसे जैसे गहरी खुदी हुई कोई धूरी! बाहर की ठडी डाफर ने मेरे दाँत बजा डाले थे। यहाँ पहुँचते ही कलेजे तक गरमाहट पहुँचने लगी।

अँधेरे मे फक्त काली छाया सरीखे दीखते मदजी की ओर मैंने अनुमान से ही देखा। कुछ थमकर मैंने कहा, "मदजी रात थोडी ही बची है, भोर होने होने को है बात जल्दी-जल्दी पूरी करो!"

"बताऊँ, बीरा बताऊँ।" मदजी बोले, तो ऐसे जैसे हिवलास (स्नेह) की बाढ मे बहकर और टटोलकर मेरे सिर पर हाथ फेरने लगे।

"तो कहाँ तक पहुँचे ?" कुछ देर बाद मदजी ने पूछा और मेरे उत्तर का इतजार किए बिना खुद-ब खुद शुरू हो गये, 'हाँ, मैंने अपने बापूजी से कह दिया कि हर्जाना भरना पडेगा और भाई को मजदूर समाज के आगे माफी माँगनी पडेगी। इस पर वह मुझे उल्टा ज्ञान देने लगे। कहा कि तू उससे छोटा है और लक्ष्मण और भरत जैसा भाई बनना अपने धरम की आन है। भगवान ने तुझे मौका देकर तेरी परीक्षा ली है आदि आदि।

"बापूजी ने हर तरह का दबाव डालकर देख लिया, पर मैं नही माना।

मैंने कह दिया कि वर्ना मैं मजदूरों के साथ मिलकर उनकी फजीहत कराऊँगा। सब गद्दी गोदामों में इज्जत खराब होगी। आखिर वे तंग आकर बोले, 'वाह तो, तेरी इत्ती ही जिद है, तो पांच रुपये दे दे और धर्माद में माड दे।'

'मेरे तो जैसे कान खुसकर हाथ में आ गए! अलगे के इत्ते बड़े दुःख की यह कीमत लगाई बापूजी ने! फिर मैं वहां नहीं ठहरा। वहां से आ तो गया, पर सोचने लगा कि यह चुनौती पूरी कैसे करूंगा? कहने को तो एक हमारे गोदाम में ही कोई सौ मजदूर काम करते थे और सब गोदामों के मिलने पर हजार से भी ऊपर हो जाते, पर तब भी आसान नहीं थी यह बात।

"तीन-चार दिन बराबर मैं मजदूरों से मिला। उनके जहन में तो बस पाट, इस पाट के साथ दिन भर की गधा खटनी और सांझ पड़े एक एक गुटका ताड़ी को छोड़ कोई बात बैठती ही नहीं थी। बाबू लोगों की महिमा में कैद उनकी आत्माएँ लड़ाकू थीं तो बस अपने आपसी मोर्चों पर इस मोर्चे पर एकजुट होने की कल्पना तक से वे अलग रहे हुए थे। बिहार के अलग-अलग जिलों के अलग अलग दल—मैं समझा समझा कर थक गया सोचा कि सैकड़ों सालों से इन्हें बाबू लोगों की महिमा और भाग दुर्भाग्य की अफीम पिलाई हुई है। इनकी नाड़ियां दिनोदिन शिथिल होती गई हैं दुनिया में कहीं कुछ हो, इन्हें कोई खबर नहीं। ये अपने हजारों हाथों से जो मेहनत करते हैं उसका फल कलकत्ता की जूट मिलों के मालिक पाट का सामान विदेशों में बेचकर चलते हैं। बीच में ये बाबू लोग भी कारबार के नाम पर आधा पूरा भटक लेते हैं घुटना-घुटनों पानी में पाट धोनेवालों को इसकी कीमत मुट्ठी भर चावल से ज्यादा नहीं मालूम और न ही मिलती है उन्हें।

'अलगे ने दो तीन बार ताड़ी चढ़ाकर शोर गराबा मचाया, पर ज्यादा हिम्मत उसकी भी नहीं हुई। पर एक दिन नशे में बकते-बकते उसके मुंह पर अचानक एक नाम आया—धाड़ू शाह! वह बोला 'धाड़ू शाह होते तो हम दिखाते कि कैसा अजाब निकलता गरीब का घर में डाकायती करने का!'

"मैंने धाड़ शाह की खोज खबर की। सुना कि वह एक बिहारी है जिसके आसाम के जंगलों में लकड़ी के बड़े बड़े ठेके हैं। यह भी पता लगा कि वह एक नम्बर का गुंडा भी प्रसिद्ध है। जलग के हिसाब से यह धाड़ू शाह उसी के जिले का था और वही उसे न्याय दिलवा सकता था। आखिर मैंने इस धाड़ू शाह का पता ठिकाना निकाल लिया। सोचा कि धाड़ू शाह की शख्सियत इन्हें अपने जातीय अस्तित्व का बोध करवा सकती है। वह एक बार आ जाए, तो अपनी जमीन के इन पिसते मरते भाइयों को ललकार-कर खड़ा कर सकता है। बस, मुझे और कुछ नहीं सूझा। डूबते को तिनका भी पकड़ना पड़ता है न!

"एक दिन चुपचाप मैं धाड़ू शाह के ठिकाने पर पहुँचने को निकल गया। पहुँचकर देखा कि धाड़ू शाह वाकई धाड़ू शाह था। हाथी जैसा शरीर और छोटी छोटी चिरमी सरीखी आँखें। कद थोड़ा ठिगना पर गला बुलंद, जैसे बात नहीं चिंघाड़ रहा हो। अपने द्वारे बंधे बीसक हाथियों की छाया उस पर भरपूर पड़ी थी शायद लकड़ी के लट्ठे इधर उधर पटकने के लिए उसने ये हाथी पाल रखे थे। मैंने पहली बार उस जमाने के आसाम में किसी बिहारी को इतना धन बल से तगड़ा देखा। मैंने सारी बात कुछ ऐसे बताई कि धाड़ू शाह का अहंकार, जो पहले से ही पहाड़ सरीखा था, और फन फूल जाए। मेरे बताने से असर ठीक पड़ा और सुनते-सुनते वह बोला 'स्साला लोग को देख लेगा'

"धाड़ू शाह मेरे साथ ही चला आया। पहुँचने के तीन दिन बाद उसने मेरे बड़े भाई को वह प्रताड़ना दी कि उसकी गुंडागर्दी से सबकी हवा सरक गई। अपनी ठेठ जुबान में उसने पता नहीं क्या मंतर फूंका कि मैं देखता रहा और सारे मजदूर एकठ हो गये।

"धाड़ू शाह जो बोलता, बस फरमान ही होता। उसके फरमान सुनते एक मजदूर दौड़ा और घूरे पर लिटते किसी गधे के गले में रस्सी डालकर हाँक लाया। इस गधे और सारे मजदूरों समेत धाड़ू शाह हमारी गद्दी पहुँचा।"

"उसके डरावने चेहरे पर क्रूरता विकराल दीखने लगी और पहले से किया हुआ निर्णय प्रकट हो गया, जब उसने गद्दी में घुसते हुए थोड़ा सा

पीछे घूमकर पूछा, 'ई दोना मे से कौन था ?'

'गद्दी पर बापूजी और मेरा बड़ा भाई दोना बठे थे। शायद अलगा घाड़ूशाह के आस पास ही था। वह लपककर आगे आया और उसने भाई की तरफ इशारा किया। फिर एक क्षणभर लगा होगा, घाड़ूशाह अपने छोटे छोटे पैरो को मोडकर गद्दी पर पसरा और भाई का गला अपने पंजे म बटोरकर उसे नीचे खींच लिया। बापूजी इस अचीती हालत से सहम कर पीछे सरके। घाड़ूशाह ने अगला कदम उठाया। भाई को उसने पीछे से ऐसी ठोकर मारी कि वह सीधा गद्दी से बाहर पहुच गया।

"बाहर मजदूरो का रेला सा था। कुछ लोग तमाशाई भी बन चुके थे। इतने म मैंने सुना कि बापूजी ने बेतरह शोर मचा डाला, अरे! रामबचन कहाँ मरा रे, जल्दी बदूक लाओ। मुझे तो पता ही था कि वह हिफाजत के लिए चार लठैत और एक बदूक का बड़ा भरोसा रखते हैं।

"बापूजी के चीखने पर घाड़ूशाह निर्भय पीछे मुड़ा और चिघाडता सा बोला, "स्साला, कितना गोली होगा तुमरे पास ? बाहिर देख, इतना आदमी को मारने मे सकेगा ? चुपचाप बाईठ जा, नही तो खींच लेंगे तुमको भी बाहिर, समझा !"

"और फिर भाई को जबदस्ती उस गधे पर उल्टा मुह करके बिठा दिया गया। एक मजदूर कही से कनस्तर उठा लाया और गधे-सवार भाई के आगे आगे उसे पीटते हुए चलने लगा। यह सवारी एक एक घर और एक एक गद्दी के सामने से गुजरी पीछे मजदूरो की फौज, बीच मे गधे सवार मेरा भाई और आगे-आगे लुढकता सा चलता दुस्साहसी घाड़ूशाह !"

मदजी जसे विश्राम स्थल पहचानते हो, यहाँ तक बोलकर चुप रह गए। बाहर स माइक पर शुरू होते भजन कीतन के बीच-बीच म कही गहरे से मुगा बोलने की आवाज भी आने लगी। भोर अपनी पदचापो म कुकुम बिखेरती पास-ही पास आ रही थी। परमेरे कानो की बेसब्री मदजी के बाल फूटने को लेकर ज्यो की-त्यो बनी हुई थी।

वे फिर शुरू हुए, "बस, घाड़ूशाह की इन भगवान सरीखे बाबुओ

की यह गत बनाने से दबे-कुचले मजदूरों के हौसले खुल गए। वे बाबुओं की महिमा की बंद से एकबारगी आजाद हो गए जैसे। उन्हें देखकर एक बार तो लगा कि वे सब कुछ बदलकर ही छोड़ेंगे। खैर, इस सारे ताण्डव का मुखिया तो था घाड़ू शाह, पर बाबू समाज की आँख में खटका तो सिर्फ मैं। घाड़ू शाह आया और चला गया। अलगे की घरवाली को उसने फिर अलगे के घर में पहुँचा दिया।"

अचानक मदजी ने एक गहरी साँस ली। अँधेरे में उनके फेफड़ों में घुसती साँस की सीटी-सी सुनाई पड़ी।

"यह तो सब अच्छा ही हुआ, इससे आपके साथ क्या बुरा हुआ?" मैंने मदजी को इस बार असमय विश्राम लेते पाकर पूछा।

"वही तो असल कहानी है बीरा!" मदजी ने इस बार साँस खींचकर हाथोहाथ छोड़ी और बोले, "मैं मजदूरों के उस हौसले को सुकारथ करना चाहता था। मैंने सारे पाट मजदूरों का एक दल बना दिया। उनकी मजदूरी, खान पान, आराम और पढ़ाई लिखाई की कोशिशें शुरू कर दीं।

"मेरे इन कामों से बाबू समाज सख्त नाराज हो गया। मैंने परवाह ही छोड़ दी। मुझे साम दाम-दण्ड भेद से साधने की तरकीबें बेकार हो गईं, तो एक दिन बापूजी मुझपर आपा खोकर गरज पड़े, 'तू मेरा बेटा नहीं है। किसी राक्षस का पेशाब है, जो तेरी माँ कहीं से लायी हो।' मुझे उनका बेटा होने का कोई गुमान वैसे भी नहीं था। पर मेरे कारण उनकी बुद्धि इतनी भ्रष्ट हो जाएगी, ऐसा अंदाज भी मैं नहीं लगा सकता था। जो हो, अचानक मुझे लगा कि वे मेरे आगे हार चुके हैं, तो मुझे जरा सी हँसी आ गई। मुझे हँसते देखकर वे और तिलमिला गये और जो सूझा सो बोलने वाले ढंग से कहा, 'तू राक्षस है तो मैं भी तेरा बाप हूँ। तुझे जेवड़ो (रस्सी) से नहीं बँधवाया तो मेरा नाम नहीं!' मैंने एक बार और हँसकर उनकी बात का मजा लिया और चला आया।

"पर यही मेरी गलती थी, बीरा! मैं अब भी बापूजी को अपना बाप समझ रहा था। उन पर जरा सा भी सन्देह नहीं किया कि वे कैसी घात लगा रहे हैं। आखिर उन्होंने अपनी कही हुई कर दिखा दी। एक दिन मैं गद्दी के दोतल्ले पर अपने कमरे में सोकर उठा ही था कि चार

सफेद कोट पहने आदमी आए और मुझे घेर लिया। उनके पीछे-पीछे बापू जी थे, बोले, 'यही है।'

"फिर देर नहीं लगी। उन चारों ने मुझे हाथ-पैरों से जकड़ लिया। मैं कुछ समझना पूछना इससे पहले वे मुझे घसीटते खींचते नीचे ले आए। मैंने छूटने की भरपूर कोशिश की, पर वे तगड़े-तगड़े चार आदमी थे। बाहर पहुँचकर मैंने देखा, अस्पताल की बड़ी सी मोटर खड़ी हुई थी। तब भी मेरी समझ में कुछ नहीं आया। इस वक्त मेरी घरवाली भी वहाँ नहीं थी। वह पहला जापा (प्रसव) कराने अपने पीहर गई हुई थी। और कौन मेरी सुनता और फिर चीख पुकार करनी चाही तो किसी ने मुंह में कुछ ठूंस दिया। मैंने आखिर अपने को उस मोटर में पड़ा पाया और उन चारों को मुझे दबोचे हुए। दिन अभी ऊँचा नहीं आया था। मुंह अँधेरा ही था। मोटर चल पड़ी। अन्दर पड़े पड़े के ही मेरे एक सूई लगा दी गई। फिर मुझे कुछ होश नहीं रहा। क्या पता कितनी देर चल कर वह मोटर कहाँ पहुँची, पर मेरी आंख खुली तो चौफेर अँधेरा था। मैंने हाथ पसार पसारकर देखा, चारों ओर बहुत पास पास दीवारें थीं।

"उस कोठरी का दरवाजा शायद दूसरे या तीसरे दिन खुला होगा। जब मुझे पता लगा कि यह पागलखाना है। मैं और पागलखाने! बापूजी का षड्यन्त्र मेरे सामने था। इस तरह भला चंगा होते हुए भी मैं पागलखाने पहुँच गया, बोरा!' मदजी ने मेरा कंधा पाकर वहां अपना हाथ रखा और कुछ साँसें लेकर बोले, "मेरे बाप ने जबदस्त बंदोबस्त किया था। मैंने लाख कहा कि मैं पागल नहीं हूँ पर छः बरस तक उस अँधेरी कोठरी से मुझे बाहर नहीं निकाला गया। मैं पागल नहीं था। पर उन दीवारों से सिर भिड़ा भिड़ाकर शोर मचाता। कभी मेरी गर्भिणी घरवाली, तो कभी अनगा और दूसरे पाट मजदूर मेरी आंखों के आगे मँडराने लगे। मैं सचमुच का पागल होने लगा। रो रोकर सबको पुकारने लगा। वह पागलखाना क्या था मेरे बापूजी का रचा हुआ यातना गृह था। मैं ज्यादा बेकाबू होता तो दो-दो दिन रोटी-पानी बन्द हो जाता। वही सफेद कोट पहने पागलखाने के आदमी आते और मुझे कोठरी में ही पीट पीटकर अधमरा छोड़ जाते। अब तो मैंने अपने आपको होनी के भरोसे छोड़

दिया। सूरज किधर उगता और किधर डूबता। मुझे कुछ पता नहीं लगता था।"

मदजी के बोल जैसे उस याद से सहमे हुए थे। अजीब नाटकीय लहजे में उनकी आवाज डूबती उभरती लग रही थी। इस बार की डूबी आवाज कुछ देर से उभरी, "फिर एक दिन मैं पागलखाने से निकाल बाहर किया गया। बाहर आया, तो दुनिया का रंग ही बदला हुआ लगा। मेरा दिमाग सही नहीं था, पर मैं इतना समझ गया कि देश का बँटवारा हो गया है। मेरे शरीर पर वही पुराने कपड़े थे। बस फर्क था तो यह कि वे अब एकदम ढीले हो चुके थे। उजास में मैंने अपने अंग निहार निहारकर देखे। हाथ-पैर सरकंडा जैसे निकल आए थे। मैं कहाँ जाऊँ? कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था।

"मुझे बाद में जाकर पता लगा कि मैं बिहार के ही एक प्रसिद्ध पागलखाने में कैद था। इस कैद की व्यवस्था में बापूजी ने न जाने कितने रुपये स्वाह किए थे। मैं कई दिन ठोकरें खाता फिरा, तब अपने पुराने मुकाम पहुँचा। पर हालात यहाँ भी बदल चुके थे। बँटवारे में यह मुकाम पूर्वी पाकिस्तान में आ गया था और यहाँ के सब हिन्दू बाबू और मजदूर परिवार या तो सब कुछ छोड़ छाड़कर भाग गये या मारकाट में काम आ गये। गाँव उजड़े पड़े थे। आदमी तो आदमी, दीवारें तक अपनी असली हालत में नहीं थीं। मैं पुराने परिचय के सहारे ढूँढ़ता भटकता फिरा। बस इतना जान पाया कि मेरे परिवारवाले रातोरात यहाँ से भागे और यही हाल दूसरों का हुआ।

"बतानेवालों ने बताया कि माहौल भयानक हो गया था। रात दिन के साथ रहे जिन लोगों ने एक दूसरे के गले पर छुरियाँ ले लेकर दौड़े। मैं पहुँचा तब तक शांति हो चुकी थी। पर मुझे न शांति चाहिए थी, न उपद्रव, मुझे चाहिए थी तो अपनी गर्भिणी घरवाली। बँटवारा हुआ ही था, सीमा-व्यवस्थाएँ इतनी मुस्तैद नहीं थीं, सो जैसे मैं गया वैसे ही लौट आया। मेरे सामने रास्ते ही रास्ते थे, पर इनमें मुझे किस पर जाना है, कुछ पता नहीं था। बस, एक ही ठिकाना रह रहकर सूझता था—मेरी ससुराल। पर वह भी तो कोई पास ही नहीं था। कहाँ मैं बंगाल में भटक

रहा था और कहाँ राजस्थान ? खैर, अपार कष्ट झेलता पहुँचा, तो मेरा रहा सहा हौसला भी दरक गया। पता लगा कि मेरे बेटा हुआ था और कुछ दिन बाद ही मेरे घरवाले माँ बेटे दोनो को ले गये।

"ससुराल वालो को मेरे बारे मे तरह तरह का सुनने को मिला था। जिनमे एक यह भी थी कि मैं नदी मे डूबकर मर गया हूँ। मजे की बात यह कि मेरे पागलखाने मे होने की भनक भी किसी को नही थी। और फिर जब मुझे यह बताया गया कि मेरी घरवाली की मौत की खबर भी उन्हे बहुत देर से मिली। तो उस औरत-जात के साथ मेरे घर म हुए जुल्मो की कई तस्वीरें मेरे मन पर दज होने लगी।

"मेरे मुर्दाये से शरीर मे बाइटे उठे और मुह से रीस के मारे झाग निकल आया। ससुराल वालो ने कई दिन रखा मुझे और फिर जब मेरे शरीर मे प्राण लौटने लगे, तो मैं फिर निकल पडा। आखिर मैं अपन बापूजी और भाई तक पहुँच ही गया। मैंने देखा कि उन्होंने स्वतन्त्र भारत मे भी वही ठाठ-बाठ बटोर लिए थे। वे भले ही रातो रात भागे हो, पर शायद पेट मे भी सोना छिपाकर भागे होगे। मुझे जिंदा देखकर वे जसे हड्बडा गये थे। फिर कुछ नही सूझा, तो ऐसी बातें करने लगे जसे मैं सचमुच पागल था और अब ठीक होकर घर आया हूँ। मुझे लगा कि उन्होन मेरे मरने तक का पूरा सरजाम वहा किया था। मैं मरा नही, तो कैसे ? यह आज तक मेरी समझ मे नही आता। मुझमे पता नही कौन-सी ताकत थी कि मैं उन पैशाचिक यातना के छ बरस जिन्दा रह गया। खैर, मुझे अब उनसे कुछ लेना-देना नहीं अपने बेटे की तलाश थी, जो मेरे ससुरालवालो के बताये मुताबिक उनके पास ही था।'

"आपका बेटा ?" मदजी के परत परत बोलने से मैं उतावल म आ गया और बेसब्र होकर पूछ बैठा।

'हाँ, वह मुझे मिला।" मदजी डूबती आवाज मे बोले, "एक थाकल (मरियल) और पीलराया हुआ बच्चा था वह। मैंन कुछ नही कहा। मेरे बिनाजी मिसरी की डली बनते बोले, "अब तेरा जीव ठीक है न, बटा ?"

'मुझे रीस आई और मेरा कमजोर शरीर काँपने लगा। मुझे

पिताजी के इशारे पर उनके हाजरियों ने दबोच लिया। फिर होश आया, तो मैंने अपने बेटे के मुँह की तरफ देखा। जैसे उसके चेहरे पर इन जुल्मों का बयान भी हरफ-हरफ दर्ज था। जो उसकी माँ के साथ हुए होंगे। मेरी डूबती साँसों को जैसे उसके इसी चेहरे ने उबार लिया।

"मैं कुछ सँभला। सोचा कि इनके बीच रह गया तो इस निर्दोष की भी दुर्गति होगी। पक्की बात थी, उन्हें जितनी नफरत मुझ पर थी, उसका चुकारा उन्होंने उसी के साथ किया था। नहीं, तो वह फूल ऐसे मुरझाकर ढीला नहीं पड़ता। मैंने उन्हें अपना इरादा बता दिया कि मुझे उनके कार-बार, धन-दौलत से कुछ नहीं लेना। मैं देश, याने जहाँ पाक है वहीं जाकर रहना चाहता हूँ। वे आराम से मान गये। बापूजी ने उदारता दिखाते हुए उपदेश दिया, 'भली बात है भले ढंग से रहे, तो देश में अपनी 'हेली' (हवेली) पड़ी है उसी में रह और वह तुझे ही दी, तेरे नाम की।'

"एक बार मुझे फिर रीस आई, पर फिर सोचा कि देश के हालात पता नहीं कैसे-क्या हों! बैठने के लिए छत का आसरा कम से कम चाहिए! और उनकी बख्शी हुई यह हवेली मैंने कबूल ली।'

मदजी ने फिर विश्राम लिया। मेरी शिराओं में जैसे खून का दौरा तेज हो गया। सच्चाई के मोर्चे पर उमर-भर जूझनेवाले इस योद्धा की यह दुर्दशा! अनगिनत सवाल मुझे तीरों की तरह कोंचने लगे। मदजी यहाँ पहुँचकर भी एक सहज-सामान्य जिन्दगी क्यों नहीं हासिल कर सके? यह सवाल कुछ ज्यादा ही उतावल मचा रहा था और मदजी थे कि विराम को लम्बा खींच रहे थे।

"आप यहाँ आ गये, फिर?" आखिर मैंने पूछ ही लिया। तभी मुझे लगा कि मेरे बोल काँपते-काँपते निकले हैं और गला भर-भर आया है।

"सुण बीरा।" मदजी जैसे किसी कटिदार घेरे को लाँघकर निकले, 'मैं अपने बेटे को लेकर यहाँ चला आया। यहाँ याने 'देश'। मैं कोई दस बरस बाद अपने देश आया था। यहाँ के हालात भी बदले बदले थे। लोगों ने मुझे पहले तो पहचाना ही नहीं और जब पहचान लिया तो बताया कि उन्होंने तो मेरे बारे में कुछ और सुना था, मैं तो नदी में डूब

कर मर गया था या साधू बन गया था। पर देर-सवेर यहाँ के लोगों ने मुझे अपना लिया। मैं अब क्या करूँ? पेट भरने का सवाल था। पास में लाल पैसा भी नहीं था। मरकर लौटे हुए का विश्वास भी किसे होता! मुश्किल थी लेकिन अपनी जमीन आखिर अपनी ही होती है। कुछ दिन आस-पड़ोस के सहारे बीते। फिर मुझे काम मिल गया। इन दिनों आज का यह कस्बा, गाँव सरीखा ही था। दूकान-कारबार इतने नहीं थे। यहाँ के ज्यादातर मर्द परदेश ही कमाते थे। उन्हीं दिनों यहाँ सेठ छोगराजजी की दूकान थी, जिसमें वे दूकानदारी तो नाममात्र को लेकिन गिरवी साहूकारी का काम ज्यादा करते थे। कहने सुनने से उन्होंने मुझे अपना मुनीम रख लिया। बापूजी का नाम ले लेकर उन्होंने बहुत थोथी कृपा भी जताई लेकिन मैंने यह सोचकर कि पेट पालना जरूरी है, उनकी कृपा ग्रहण कर ली।

"यह हवेली तब ऐसी खस्ताहाल नहीं थी। मैं और मेरा बेटा दोनों इसमें रहने लगे। कुछ वक्त निकला कि मुझे यह मुनीमी छोड़नी पड़ गई। बात यह थी कि सेठ छोगराज गिरवी रखने के मामले में पूरा कसाई था। औरतों के घाघरे तक गिरवी रखने में संकोच नहीं बरतता। कितने खेत और कितने घर बार सेठ की जाँघ नीचे दबे थे, कोई अनुमान नहीं था। गवेड़ी किसानों को सेठ के आगे गिड़गिड़ाते देखकर मेरी छाती में कुछ कसमसाने लगता। कितने ही औरत मर्द ब्याज के बदले सेठों की बेगार करते थे। यह सब देखते हुए रह रहकर अलगा याद आने लगता। पाट (जूट) की बन्दू में सुबह से शाम तक सिर घुसेड़े रहनेवाले व मजदूर तो यहाँ नहीं थे, पर उनके जैसे दूसरे बहुतेरे थे।

'और उस साल बेतरह अकाल पड़ा। चौफेर भूख के भतूलिये उड़ रहे थे। भूखे प्यासे लोगों की भीड़ जुट जाती। उस दिन, जब मैंने नौकरी छोड़ी, का नजारा मुझे ज्यों का त्यों याद आता है। एक औरत अपने बच्चे को गोद में उठाये सेठ के सामने खड़ी थी। 'अरे, बिना कुछ अड़ाणगत (गिरवी) रखे तुझे क्या दूँ?' फटे बाँस सरीखे गले से सेठ उसे झिड़कियाँ दे रहे थे। औरत ने घूंघट खींच रखा था। उसकी अवस्था कोई ज्यादा नहीं थी। कुछ देर झिड़कियाँ खाने के बाद उसने अपने गोद के बच्चे को

सेठ के आगे बढा दिया। उसका अर्थ यह था कि मेरे पास इसके सिवाय कुछ भी नही है, इसे ही गिरवी समझकर रख लो। जैसे ही उसने दोनो हाथो मे झुलाते हुए उस बच्चे को सेठ के करीब पहुँचाया, सेठ रोस मे बेकाबू होकर उस बच्चे को परे धकेलते बोले, 'इस कीडे का क्या बटेगा बोलती है तो अपनी कीमत बोल ?'

"वह बच्चा सेंजार धक्का खाकर औरत के हाथ से छूट गया और पहले, सेठ जिस तख्ते पर बैठा था, उसके सिरे पर गिरा फिर 'लद' की आवाज करता पक्की जमीन पर। मैं पास ही बैठा खाते लिख रहा था। मेरा खून एक समचे ही दौडने लगा जसे, लपककर बच्चे का उठाया, और उसकी माँ को थमाया, और सेठ के मासदार गाल पर सज्जे हाथ की खीचकर झापट धर दी। सेठ पीड से तिलमिलाकर चीखा। उसके हाजरिय दौडे और मुझे पकडा। उसी वक्त नौकरी छूट गई।

"पर क्या सेठ इतने मे सबर करते। स्वत त्र भारत की पुलिस को मेरी हकडी उतारने का काम सौपा। तब यहाँ थाना नही खुला था। पास की किसी चौकी से पुलिस पहुची और मुझे पकडकर ले गई। वहा से पिट कर आने के बाद गाँव मे मेरी नयी पहचान बन गई। इतने बडे सेठ को थप्पड मारने का अजीब दबदबा हो गया।

"तभी स्वत त्रता की हवा पसरना शुरू हुई। चुनाव का दौर आया और मैं बिना कुछ जान समझे नेता कहलाने लगा। काँग्रेस और दूसरी पार्टियो की बातें चलती। इन सबके बीच म कमजोर-सी सूरत म कम्यूनिष्टो की चर्चा भी होती। लोग कहते कि कम्यूनिष्ट पार्टी 'लूट खावणी' पार्टी होती है और कम्यूनिष्ट का अर्थ है 'कौमनिष्ट' याने जो कौम का नष्ट कर दे। इन्ही दिनो यहाँ इस 'कौमनिष्ट' पार्टी की सभा हुई। मैंने दूर खडे खडे भाषण सुने। सुनकर मुझे लगा कि बिना जाने समझे भी मैं तो शुरू से ही इस पार्टी म हू। मैं पढा लिखा नही था और न मुझे आज से पहले यह पता था कि जूट मजदूरो के लिए मैंने जो लडाई मोल ली थी, वही इस पार्टी का खास मुद्दा है।

'सभा उठने पर मैं उन भाषण देने वालो के पास पहुँचा और कहा, 'मैं आपकी पार्टी म मिलना चाहता हूँ।' मेरे भोलेपन पर वे हँसे और

बोले, 'अच्छी बात है, तुम आज से हमारी पार्टी म हो, ठीक है!' बोलने वाले ने किसी का नाम लेकर ज़ोर से पुकारा और उसके आने पर मुझे उसके सुपुर्द करते हुए कहा, 'ये देखो नये कामरेड इनकी मदद करना।'

"उसने मुस्कराकर मुझे देखा और पूछा, 'क्या नाम है?'

'मदन मोहन।' मैं आत्म विश्वास से बोला।

'वे थे कामरेड गणपतजी। उस दिन के बाद मैं उनके इर्द गिर्द ही रहने लगा। वे पास के किसी गाव से अक्सर आते थे। उनके साथ से मेरी समझदारी बढने लगी और कई बातें, जिनके बारे मे मैंने पहले कभी सोचा तक नही था, मैं जानने लगा। मुझे लगा कि मेरे जैसे के परिवारो म सिवाय 'वाणिकी' पढाई के, बच्चो को और कुछ नही पढाना उन्हे धन के अलावा सब बातो से अनजान रखने का पुश्तैनी षडयन्त्र है। मेरे अपने साथ यही हुआ। घर पर आनेवाले मास्टरने पता-ठिकाना लिखने भर की अंग्रेजी सिखा दी, बापूजी ने कान उमठ उमेठकर वाणिकी रटा दी और मैं कारबार मे लग गया। दीन दुनिया से आखें मीचे धन कमाना, चाहे किसी आदमी की खाल उतारनी पड जाए, मेरे खानदान के पास पीढियो से यही शिक्षा रही। इस शिक्षा से आदमी क्या बन सकता है इसका उदाहरण मेरे बापूजी और यहाँ के एक-दो राय बहादुर सेठ भी थे। खैर, कामरेड गणपतजी के साथ से मेरी अक्ल की खिडकियाँ खुलने लगी थी। मुझे लगने लगा था कि कुए मे से निकलकर भरपूर आसमान को अब ही देख रहा हूँ कि मेरी यह हालत हो गई।"

'यह हालत? मदजी अचानक बात को तोडकर हाँफने मे थमे तो मुझे याद आया कि ये वही मन्जी हैं जिन्हें लोग बावरा मानते हैं और गाँव के बालक इन्हे छेडकर भाग जाते हैं।

"हाँ बीरा, यह हालत" मदजी तपाक से बोल पडे, "तुम शेराराम को तो पूरी तौर पर जानते हो न?"

"हाँ लेकिन क्यो?" मैंने पूछा।

'सुण, इसने भी उन्ही दिनो नेतागिरी शुरू की थी। इसके बाप ने उम्र भर सेठो की लठैताई की थी। इलाके का नामी लठत था। वह मरते

वक्त अपनी पाप और अत्याचार की खासी कमाई छोड़कर मरा था। अब तो इस शेराराम के अपने उलट-सीधे सौ धंधे हैं। पर जीते-जी इसके बाप ने इसे एक लाल पैसा नहीं दिया था। नामी लठैत का बेटा होना बेशक इसके सिर चढ़कर बोलता था। इसके चलते शुरू से ही अवारा, बदचलन था। मेरी हवेली इसके घर से ज्यादा दूर नहीं थी। अब भी नहीं है।"

"हाँ, मेरे घर से दो गली इधर ही है, आपसे दूर कहा।" मैं मदजी के अनचाहे विस्तार से झुंझलाकर खुलासा देने लगा।

वे बोले, "हाँ, तो मैं परदेश से इस हवेली में आकर रहने लगा, तो इसने मेरे साथ जाने क्यों मेल-मुलाकात बढ़ानी शुरू कर दी। मैं इसे मिथ्याचार ही समझने लगा। फिर यह रात बेरात आने लगा और कई बार मेरी हवेली में ही सोता उठता। इसके आवारगी के किस्से तो कई थे, पर मेरे सामने यह नेक पाक रहता। मैंने सेठों की नौकरी छोड़ दी थी और कामरेड गणपतजी का साथ पकड़ लिया था, तब की बात है। यह एक दिन बहुत रात गए मेरी हवेली आया। बुरी तरह हाँफ रहा था और घबराया भी नजर आ रहा था। दरवाजे पर खड़े खड़े ही इसने कहा, 'मद, मुझे जल्दी से अन्दर आने दे, फिर सारी बात बता दूगा। मैंने दरवाजा छोड़ दिया। यह अन्दर आ गया, तो मैंने दरवाजा बन्द किया और इसके सामने आ खड़ा हुआ। इसकी हाँफणी कुछ थमी, तो बोला, 'वे यहाँ नहीं आएँगे, पर आ जाएँ तो मुझे बचा लेना।'

'कौन?' मैंने पूछा।

'वे,' वह बताते कुछ झिझका, फिर जैसे छाती मजबूत करता बोला, 'पास के गाँव के सांमी।'

"सांमी?" मैं चौंका।

'हाँ, मदा मैं तुम्हें सब-कुछ बता दूगा। आधा हिस्सा भी दूगा।' वह उसी तरह बोला।

यह, यही शेराराम?' मदजी के इस रहस्य-वृत्तांत से मेरा कौतूहल बढ़ने लगा।

"हाँ, यही शेराराम रे, यही।" मदजी को जैसे मेरी आवाज में

आई अविश्वास की बू से ठेस लगी। वे कुछ झल्लाए से बोले, "फिर इसने मुझे सारी बात बताई। यह निचली जातियों की औरतों के साथ उनकी गरीबी लाचारी का फायदा उठाकर अपनी काम वासना मिटाता था। पर उस दिन तो इसने वह काम किया था कि घिन से मुझे उल्टी आने लगी। इसने बताया कि इसका जिस औरत के साथ शरीर का खाता खुला था, उसके एक चौदह बरस की फूटरी-सी बेटी थी। इसने उस छोरी का ब्याह बाहर का सासी बताकर अपने किसी आदमी के साथ करवा दिया, फिर उसे ले जाकर पंजाब में बिकवा कर पैसे बना लिए।"

"यही शेराराम, जो नेतागिरी करता है।" इस बार तो मैं एकदम अविश्वासी बाल बोल गया।

"अरे, हां रे!" मुझे सुनकर लगा कि मदजी इस बार तो सचमुच पेट से बोल पड़े हैं। मुझमें सिहरन हुई कि कहीं पीपल का प्रेत उनमें फिर न उतर आए!

पर मदजी तुरन्त शांत दीखने लगे और बोले, "शेराराम ने मुझे बताया कि उसने पहले भी ऐसे कई सौदे किए थे। इस बार उनको चरका नहीं दे सका और उस रात जैसे ही उनकी बस्ती पहुँचा, सारे सांसी मर्द एकठ होकर उसे मारने पर उतर आए।

"और उन्होंने पुलिस में इत्तला कर दी होगी तो?" मैंने शेराराम को डराना चाहा।

'पुलिस क्या होती है, उन्हें अभी पता ही नहीं। शेराराम निश्चिन्ती से बोलने लगा, 'और फिर वे कौन सी अपनी छोरी मांग रहे हैं। वे तो कहते हैं कि छोरी के जितने पैसे मिले हैं, वे उनको दे दूं।'

मैं कुछ नहीं बोला और शेराराम की कही कहीं सुनता गया।'

'आज मैं अकेला घिर गया। कल तो उनका बंदोबस्त कर दूंगा, पर आज वे तावे नहीं देंगे। शाम से ही सभकर बैठे हैं। जरूर मेरे घर भी पहुँचेंगे, मैं तुम्हें इस अहसान के बदले आधा हिस्सा दूंगा, पर यह बात अपने तक ही रखना।'

'मेरे गले में तो जैसे थूक तक सूख गया। मैं सूखे गले से बोला, 'यह हिस्सा-पाती तुम अपने पास ही रखना।'

'पर ' शेराराम बोला।

'पर क्या ? मेरे यह सब किसी से कहना जरूरी थोडे ही है।' मैंने उससे पीछा छुडाने की उतावल मे कहा।

"उस दिन बाद शेराराम ने मेरे घर आना जाना एकदम बद कर दिया। शायद उसकी समझ मे आ गया था कि उसने गलत आदमी को अपना राजदार बनाकर बडी भूल कर दी है। और यही सच था। उसकी यह करतूत मुझमे किसी पकाव खाए फाडे सी दूखनल गी थी। मेरा मन कहने लगा कि उसकी यह करतूत खुल्लम खुल्ला न कह डाल, तब तक मुझे चैन नही।" कहकर मदजी फिर विश्राम लेने लगे।

'यह शेराराम ! यह, जो आज एम० एल० ए० बनने की तयारी कर रहा है, इतना घिनौरा (घृणित) आदमी है ?" पूछते पूछते जैसे मैं अन्दर-बाहर से सिहर उठा।

'घिनौरा ? इनने म इसने अपना घिनौरापन कहा दिखाया ! खास बात तो वह है, जो इसने मेरे साथ किया।" मदजी इस बार अविश्वसनीय धीरज से बोले और कुछ थमकर बताने लगे, "इसने इधर तागिरी पूरी तौर पर शुरू कर दी थी। यह गाव बढते बढते कस्बा हो गया था। तहसील और नगरपालिका के दफ्तर खुल गए। वह शायद इस गाँव का पहला नगरपालिका का चुनाव था। शेराराम वाड मेम्बर के लिए चुनाव मे खडा हुआ था। मैं इसी के वाड मे था, सो मुझे मनाने मेरे पास आया। मुझसे कहा कि मैं उसे वोट भी दू और सपोट भी करूँ। मुझे कामरेड गणपतजी ने इसे वोट तक देने से मना कर दिया। मैंने उससे दो टूक कहा, 'मैं तुम्हे न तो वोट दूगा और न ही वस पडत दूसरो को देने दूगा।'

"इस बीच ही मेरा सबसे बडा सहारा टूट गया। एक दिन अचानक सुनने म आया कि कामरेड गणपतजी की हत्या हो गई है। फिर पूरी बात का पता चला। पास के गाँव मे अभी तक रजवाडो सी ठकुराई और 'रावळ (सामतशाही) की मनमानी चल रही थी। गाँव के अछूतो को उन कुण्डियो से, जिनमे गाय डागरे पानी पीते थे, पानी भरना पडता था। कामरेड गणपतजी की अगुआई मे अछूतो ने सबके साथ पानी भरने की चुनौती दी थी। गाँव का ठाकुर कुए पर नगी तलवार लेकर खडा हो गया

था और जैसे ही कामरेड गणपतजी ने अछूतो को आगे बढकर पानी भरने को ललकारा, ठाकुर ने लपककर तलवार उनके पेट के आर पार घुसेड दी थी। मुझे तो ऐसे लगा जैसे मेरा एक बाजू टूटकर अलग जा पडा। मैं उनकी कम्युनिष्ट पार्टी का सदस्य था या नही, पता नही, पर वे मुझसे हमेशा यही कहते कि हमने लडाई छेड दी है, एक दिन हमारी जीत जरूर होगी।

"मैं उनके मरने से अडोला-अडोला (सूना सा) हो चुका था। इधर वे चुनाव हुए और शेराराम हार गया। वह दूसरे दिन ही मेरे पास पहुचा, 'तुमने ठीक नही किया मैं तुम्हारा ध्यान रखूगा।'

मैंने पूछा, 'कैसे ?'

'तुमने लोगो को मेरे बारे मे उलटी पिला पिलाकर भडकाया और मेरे बाट ताडे। मुझे पता है, तुमने किससे क्या कहा।'

"मैंने किसी से कुछ नही कहा था, पर इस झूठी ताहमत और दादा गिरी से चिढकर मैंने कहा, 'हाँ, कहा और जिससे नही कहा, उससे भी अब कहूँगा। तुम मेरी दुम काटो, तो जरूर काट लेना।'

"उसने मेरे सामने देखकर जबडा भीचा और कटकटाकर बोला, 'दुम तो तेरी ऐसी काटूगा कि याद रखेगा।'

मदजी एक बार फिर चुप हो गए। बाहर शायद उजास धीरे धीरे अपने पाँव पसारने लगा था। चिडियो की चहचहाट शुरू हो रही थी। मैंने सोचा कि पूरब दिशा मे सूरज के स्वागत म गुलाल उड रही होगी और कुछ देर मे ही धूप का धनी अपना मुह उठाए बाहर आ जाएगा।

'बटा !"

मैं सुनकर चौका। मदजी को आज तक किसी को इस सम्बोधन से पुकारते नही सुना था। छोटा हो या बूढ़ा ठेरा, वे हरेक को 'बीरा' कहकर ही पुकारते। साथ ही उन्होंने मेरे सिर पर अपना हाथ रख दिया।

उजास धीरे धीरे उस अधढही, जजर चौखट को लाँघकर अन्दर आ रहा था।

"इस बात को कई दिन बीते। बीच मे मेरे बापूजी के मरने की खबर भी आई, पर मैं नहीं गया। मैं फिर उधार की जमीन पर खेती करने लगा

था। दो जीवा के लिए अनाज हो ही जाता। सरकारी स्कूल मे मेरा बेटा पढने लगा था। वह कोई तेरह चौदह बरस का हो गया था। और ।" बोलते-बोलते मदजी की आवाज ठस हो गई जैसे।

आसरे मे अब भरपूर उजास था। मैंने मदजी को गौर से देखा। एक तरफ की दाढी अस्त व्यस्त छितराए काले सफेद बालो के बावजूद भी अब वे उतने विकराल नही लगे मुझे। बस, उनके चेहरे पर दु ख और थकान नजर आई।

वे बोले, "मैंने सदैव अन्याय से मोचा लिया और इसी के पीछे बावरा बन गया। मुझमा बावरा तो बहुतो को होना चाहिए। मेरा बटा रहता, तो मैं उसे भी ऐसा ही बनाता।"

मदजी की आँखो म से दो चार माती धीमे धीमे लुढक पडे और उनके सूखे सूखे गालो पर छितरान लगे। मैं जान गया कि उनके ये आसू बहुत मुश्किल से रस्ता पाकर बाहर आए ह।

"उसका क्या हुआ ?" मैंने भोलेपन से पूछा।

"क्या हुआ ?" मदजी ने अचीती तैश खाकर उत्तर दिया, "इस शेराराम ने अपने आदमी की ट्रक से उसे भरे बाजार मे कुचलवा दिया। उसकी अतडिया ट्रक के पहिये स लिपट गइ। वह कच्चे काकडिए की तरह फीस गया। उस दिन दिवाली थी। लोग दिये जलाने के लिए तेल-घी खरीद रहे थे, जब जाकर मैंने उसकी अतडिया इकटठी की। ड्राइवर ट्रक वही छोडकर भाग चुका था। फिर पुलिस आई और झूठी सच्ची तफ्तीस करके वह मासूम लाश मुझे सौंप दी। इत्ती देर तो मैं पथराया सा रहा पर अचानक मुझमे रीस ने विकराल रूप धार लिया। मैं चीखकर भागा, "शेराराम, तूने, तूने मारा है इसे मैं तुझे नही छोडूगा ।"

"लोगो ने मुझे पकडा। मैं बेकाबू हो गया था। अपने ही कपडे फाड रहा था। धूल उछाल रहा था। लोगो ने मुझे बाँध दिया और मेरे देखते-देखते उसकी छत विक्षत लाश को गठरी बनाकर चिता पर रख दिया।

"फिर मेरा वेग कुछ थमा, तो मुझे पता लगा कि थाने मे शेराराम खुद अपने आदमी को ले आया था। चलान मे यह लिखा गया कि मेरे बेट की मौत पिछले पहिए के नीचे दबकर हुई है। इसमे ड्राइवर का कोई

कसूर नहीं होता। यह सब सुनकर मैं फिर बेकाबू हो गया। थाने के सामने पहुँचकर हाय तौबा मचाने लगा। थानेवालों ने मुझे पागल करार देकर, चार पाँच सिपाही लगाकर घर पहुँचवा दिया।" मदजी क्षण भर थमे, फिर बोले, "और मैं एक बार फिर पागल हो गया बेटा!"

मुझे लगा कि मेरी आँखों में कुछ तैर रहा है। मैंने उन पर हथेली ढाँपी तो वह गीली हो गई।

मैंने सोचा, मदजी का किस्सा खत्म हुआ, पर वे फिर बोलने लगे, "तीन-चार बरस मेरा यही हाल रहा। मैं बाजार पहुँचता और मुझमें वही बवाल उठ खड़ा होता। मैं ऊल जुलूल बकता। धीरे धीरे यह जग मानी हो गयी कि मदजी बावरे हो गए हैं। मैं कुछ संतुलित भी रहता, तो टोपर टोली मेरे कपड़े खींच खींचकर चिढ़ाने लगती। उधर मेरे राम की नेतागिरी और कमाई दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई, इधर मेरी यह पुरानी हवेली बिना मरम्मत संभाल के ढहती गई।"

"पर, मदजी! अब आप ऐसे बावरे बनकर क्या रह गए हैं?" मैंने अपने ही अनजाने में पूछ डाला उससे।

"सुन बेटा पाँच सात बरस तो जरूर मेरा मुझ पर काबू नहीं रहा होगा, फिर ऐसी बात नहीं रही। मेरा चित्त स्थिर होने लगा। तो भी मैं जान बूझकर बावरा ही रहने लगा। इस बावरेपन में यह दुनिया और साफ साफ और नंगी नजर आने लगी मुझे। थाना-पुलिस आराम से सोता रहता है और मेरी नींद हराम रहती है। आसपास का सारा जोर-जुल्म और पापाचार उससे पहले मैं ही देखता हूँ। मैं मेरे राम को नहीं पहुँच सकता, पर इस बावरेपन में उसे जी भरकर कोस तो सकता हूँ यह बावरापन गया, तो मुझमें क्या रह जाएगा?'

"आपको पता है कुछ रात को आपके मुँह से रीस के मारे झाग छूटने लगे थे।

'हाँ, रीस आती है मुझे यह रीस ही मेरा धन है यह धन किसे सौंपकर मरूँगा यही फिक्र करता हूँ। मुझे पक्का भरोसा है कि मेरी रीस से भले ही कुछ न हुआ हो, पर मेरे बाद के लोगों की रीस जरूर रंग लाएगी। आदमी के आदमी को ही दरख्त की तरह खाने और भूख प्यास

म गाद का बच्चा अडाणगत (गिरवी) रखनेवाले हालातो की इस पवित्र रीस की सरत जरूरत रहेगी।'

मैं मदजी के चेहरे को घूर-घूरकर देख रहा था। उनकी फैली हुई आँखा म जैसे कोई भव्य झाँकी नजर आ रही थी मुझे।

आखिर मैंने उस आसरे मे एक बार और नजर दौडाई। कोने म नाली के पास पमाव सूखने से जम चाढे दीख रहे थे, तो उससे कुछ दूर धुएँ से काली हो चुकी तीन ईंटें राख पर पडी थी, जिनमे पता नही कितने दिन पहले मदजी ने चूल्हा जलाया होगा और अपनी रोटी सेंकी होगी। एक टूटे हुए काँच के पास जग खाया रेजर पडा था, जिससे शायद मदजी ने अपनी दाढी खुरचने की चेष्टा की होगी और आधी खुरचकर ही छोड दी होगी।

फिर मैं उठकर बाहर चला आया। मदजी अपनी झोली हो चुकी खाट म मूर्तिवत बैठे थे। जैसे उन्होने अपनी सारी जद्दो जहद भी मेरे साथ विदा कर दी हो।

रातभर घर न पहुँचने की पूछ ताछ का घर पर क्या जवाब दूगा, मुझे इस बात की जैसे कुछ फिक्र ही नही थी।

रतजगा

थके-हारे सूरज का उजास कस्बे के कगूरा पर स्याही बनकर बिखर रहा था। भीमकाय हवेलियो से घिरी सँकरी गली म सावित्री उतावली-सी चल रही थी। ऊँची दीवारो के सायो ने गली पाट रखी थी, जिससे अधेरा पहले ही नीचे उतर आया था। इस अँधेरे से निभय सावित्री बढती जा रही थी।

भक ! किसी हवेली के शीश पर बल्ब जला।

छिटकती रोशनी मे सावित्री को वह दिखाई पडा—मरियल कुत्ता। हाथ मे दबे ठोगे पर सावित्री की पकड शिथिल होने लगी। कुत्ता धीमे धीमे पास आ रहा था। सावित्री ने ठोग को आँखो के आगे लेकर तोला। उसके मन मे घणा छूटने लगी। कुत्ता सामने पहुँचते ही सावित्री ने ठोगा उलट दिया। असली घी वाला केशर मिश्रित घेवर ठक से जमीन पर जा पडा। एक बार सूघकर कुत्ता घेवर चबाने लगा, चबड चबड !

कुछ देर कुत्ते को घेवर खाते देखती सावित्री खडी रही, फिर चली तो अपने मे हल्कापन लेकर। जैसे घेवर नही, चट्टान छिटककर चली हो।

"सावत्तरी, यह ले, टाबरो (बच्चो) के लिए मिठाई लेती जा।' लौटते वक्त नाम बिगाडकर बोलनेवाली बडी सेठानी ने यह ठागा पकडाया था। वही खोलकर देखा, तो सावित्री को अपनी छाती मे भाला धँसता जान पडा था। मन हुआ था कि पलटकर ठोगा सेठानी के मुह पर दे मारे और बता डाले कि लेकिन सावित्री ने थामे रखा खुद को। ठागा लेकर चुपचाप हवेली की सीढियाँ उतर आई।

सावित्री सात दिन के लिए हवेली मे रसोईदारनी बनी है। ब्याह के विशाल रसावडे को सँभालने वाली दानी सयानी रसोईदारनी। उसकी शोहरत के बूते सन्देश लानेवाली नाइन ने कहा था, "दस रुपये दिहाडी, सात दिन का खाना पीना और इनाम बख्शीश मिलाकर दो सौ की पक्की कमाई है। सावित्री, मेरी सौगन्ध, इन्कार मत करना। अरी! आपा नहीं सँभालोगी तो तेरी टाबरी (औलाद) कौन पालेगा?"

मुहलगी नाइन की मारक सहानुभूति से सावित्री सूत-भर भी विचलित नहीं हुई थी। यों पग-पग पर ढहना छोडे सावित्री को अर्सा बीत गया। अब तो ऐसा मौका आने पर उसे फकत फीकी-सी हँसी आती है—सावित्री! क्या तू ही थी जो खुद को सेठानी समझने लगी थी? और तेरे लिए यह बात कब इतनी सीधी-सच्ची बन गई कि तेरे बच्चे कौन पालेगा?"

फाल्गुनी बयार में उबरी ठंडक के खिलाफ अपना पुराना शॉल कसते सावित्री घर पहुँची। एक बडे घर के पिछवाडे गोदामनुमा कमरा और टीन की छतवाली रसोई, यही है सावित्री का घर। बल्ब की रोशनी में जूतियाँ देखकर सावित्री ने जाना—श्रीकांत आया है। जरूर सबके बीच रसोई में होगा।

गुड की भेली को लगे चींटों की मानिन्द सब चूल्हे को घेरे हुए थे। कैलाश तिनका गडाकर अंगारे कुरेद रहा था। राजू रुआंसा-सा सिर झुकाए बैठा था। सिर्फ सीमा सो रही थी।

"खाना बनाया?" सावित्री ने पूछा।

"हाँ, बनाया था।" बदरंग ऊनी कनटोप में अँगुली डाले सावित्री के पतिदेव, रतन बाबू ने बताया।

सावित्री ने कैलाश की तरफ देखा। वह पक्का जवाब चाहती थी। कैलाश मुस्कराया, तो सावित्री को याद आया कि इस स्कूल गए तीन दिन हो गए हैं। उसकी अनुपस्थिति में घर सँभालने के बहाने से लाचार कर देता है।

"माँ" अबकी राजू बोला और ठिठक गया।

सावित्री को समझते देर न लगी। सवेरे राजू ने जिद की थी—साथ चलूगा। हवली के निकट तामझाम म उसको सुध कैसे लेता? लडान पर नही माना, तो मार पडी। राजू सुबकता रहा और सावित्री पूजा-पाठ करती रही थी। निकलने लगी, तो एक बार फिर छाती स लगाकर राजू को लडाया था, "मैं आज अपने साथ हवेली से मिठाई लाऊँगी। तू सोना मत, है न!"

अब तक राजू माँ के खाली हाथ भाँप चुका। अपनी ठौर खडा होकर पैर पटकने लगा, "मिठाई ऊँ ऽ ऽ ऽ!"

सडाक्!

"बदमाश! ले, मैं दू तुझे मिठाई। नालायक सुबह से सता रहा है।" कनटोप से हाथ निकालकर रतन बाबू ने राजू को झापड दे मारा।

राजू लडखडाया कि श्रीकात ने लपक कर थाम लिया। उसने राजू को गोद म उठाया और रसोई से बाहर चला आया। रतन बाबू पीछे निर्विकार भाव से अपना कनटोप ठीक करने लगे। हिलने डुलने से ऊपर सरक आया था।

सफेद बादलो से छनती चाँदनी म राजू को लिए श्रीकात घर से दूर निकल आया था। तभी पीछे से सावित्री की पुकार सुनी, "श्रीकात बाबू इसे लेकर कहाँ जाओगे?"

"भाभी।" घूमकर श्रीकात ने देखा—सावित्री राजू को लेने बाह पसार चुकी थी। रोते हुए राजू को सावित्री की गोद मे उतारकर श्रीकात ने सावित्री को देखा। उसने श्रीकात का घुटा घुटा सम्बोधन शायद सुन कर भी नही सुना और मुडकर जाने लगी।

अपलक देख रही है सावित्री—ऊपर गरलपान करते नीलकण्ठ और नीचे समुद्र मथन मे लगे देव मानव। देखते देखते सावित्री का सस्कार पोषित मन अभिभूत होता है। शिवजी की अधमुदी आँखो से कैसी शाति बरस रही है—जहर गले से उतारकर भी! अचानक सावित्री ने कैलेण्डर की दशा पर ध्यान दिया। कितना पुराना हो गया यह कैलेण्डर! कसी-

किसी आँधियों ने इसे झकझोरा है। दीवार पर चक्कर खाने से इसके चारों ओर रगड़ का दायरा उभर आया है। किनारे फट चुके हैं। कहीं ऐसा न हो कि शिवजी के कण्ठ में ठहरा हुआ जहर छलक जाए और सबको लील ले। चाहे जो हो, वह इसे उतारेगी हर्गिज नहीं। समुद्र मथन का शोर सावित्री को अपनी ही छाती से गुजरता मालूम होता है। उचाट नींदवाली सावित्री की रातों में यह फटा-पुराना कैलेण्डर ही उसका एक सहारा बनता है। कितनी कितनी बातें करती है सावित्री इस मूर्ती तस्वीर से!

"शिवजी, आप भी नशेड़ी थे। भाँग, गाँजा और धतूरा सबका सेवन करते थे। फिर भी संसार आपको पूजता है!" अपने मन में उठती शंकाओं से काँप गई। नशा—इस शब्द से बढ़कर डरावना सावित्री के लिए कुछ भी नहीं। इसी के बहाने उठी शंकाओं के लिए सावित्री का धर्मभीरु मन आप ही निराकरण ढूढने लगा, मुझे माफ करना, भगवान। आप परमेश्वर हैं, त्रिलोकी नाथ आपका और संसारी का कैसा मेल?"

सावित्री ने गमछा खींच लिया। अपने बिस्तर के सिरहाने तले पड़े गमछे से परस होते ही एक चिपचिपाहट सावित्री की आत्मा तक व्यापने लगी। आदमी के मुह की लार, जिसको सोचकर ही मितली आती है—इसी में तर गमछा हर रात सावित्री सिरहाने रखकर सोती है। रतन बाबू की ठुड्डी से गले की ओर उतारती लार उसे कई बार पोछनी पड़ती है। आज वे रीस में थे, जरूर अफीम के छूतरे ज्यादा लिए होंगे। उनकी रीस किस पर थी? सावित्री याद करने लगी। कोई उत्तर नहीं था। फिर शायद खुद पर ही थी। लोग रतन बाबू के बारे में ठीक ही तो कहते हैं, "यह आदमी नहीं चलता-फिरता नशा है—अफीम का शरीर!"

कहीं आँधी उमड़ी है। खिड़कियाँ और दरवाजा बंद हैं लेकिन पल्ला पर सिर पटकती हवा की चीखें सुनने लगी हैं।

कैलाश, राजू और सीमा नींद में डूबे हैं। लार की एक तागा नदी को गमछे में लपेट कर सावित्री ने सिरहाने रख लिया है। अचानक बिजली गुल हो गई है। जीरो वाट का जलता बल्ब बुझ गया है। कमरे में अंधकार ठसाठस भर चुका है। अँधेरे में सावित्री वही आँखें ढूढने लगी है—शिवजी की अधमुंदी शांत आँखें! सावित्री उन आँखों की

अतल गहराई मे डूबना चाहती है लेकिन कही से आकर अनगिनत लडियाँ उसे उलझाने लगती हैं—बेहिसाब उलझी लडियाँ !

कितने फूले थे सावित्री के पिता, जब सावित्री का रिश्ता इतने बडे घर हुआ। लाखो का कारबार, मान मर्यादा और बेटी के लिए चाँद सरीखा सुरूप वर। सावित्री का सौभाग्य डाह करे जसी बात थी। बहू बनकर सावित्री रतन बाबू के घर आई, तो बालसुलभ सरलता से समूचा वैभव मुह फाडकर देखती रह गई। चौफर अपने रूप की कहानियाँ सुनती, जिसके चलते इस घराने ने मागकर उसे बहू बनाया था। सावित्री के मामूली हैसियतवाले पिता कैसे ना करते ? क्यू करते ? वे सावित्री के दुश्मन थोडे ही थे, जो यह मुह माँगी मुराद पलट देते।

उन दिना रतन बाबू की शौकीन मिजाजी के किस्से चलते थे। कुछ लोग रात दिन उन्हे मशहूर करने मे लगे थे। वे नहाते, तो नालियों म बहे इत्र फुलेल से मुहल्ला गमकन लगता। सिल्क का सोनलिया कुर्ता जिस पर बसरे के असल मोतिया वाले बटन और ब्रासलेट की बारीक घुली हुई धोती पहनकर वे गली से गुजरत, तो रसोइयों में बैठी बहुओ के कलेजे कौंध जाते। काश ! उसका घरवाला भी ऐसे गमकता महकता निकले! अपनी चाल से जमाने की चूलें हिलात रतन बाबू अपने पसन्दीदा पनवाडी की दुकान तक आते। सैकडो रुपय पान-किवाम के उनके खाते म दज होते। देश मे रहते तब तक हर तीसरे दिन तालाबो के इदगिद रतन बाबू अपने दोस्ता के साथ गोठें उडाते। सावित्री सुध बुध भूली-सी इस व्यापार को देखती रहती। अपने पति की पकड म न आने वाली विराटता उसम अथाह भक्ति भाव पनपाने लगी।

इस इत्र फुलेल से तर आलम मे कुछ दिन बीते। इन्ही दिनो एक नई खुसुर फुसुर सुनने लगी। सावित्री को उसकी ननदा ने ही बताया कि भाई नशा करने लगा है। वे सावित्री से अपने रईस भाई को बश म करवाना चाहती थी कि शायद उसके मनाये मान जाए। अपने देवता-तुल्य वर-देवता को सावित्री क्या मनाती ? धीरे-धीरे सब उजागर होने लगा। रतन बाबू राता म देर गए आते, तो सावित्री दरवाजा खोलने के लिए जागती बठी होती। रतन बाबू झूलत-डालते सीढ़ियाँ चढ़त, तो सावित्री

उन्हें सहारा देती। फिर उन्हें होश आता, तो वे रात की बात किसी को बताने से सावित्री का बरजना नहीं भूलते। इस बरजने का सावित्री शिरोधार्य करके रखती।

कैलाश के जन्मने तक यह भ्रम धन प्रतिष्ठा की ओट में छिपा रहा। लोग सीधा कहने से कतराते थे, क्योंकि जानते कि उनके शब्द बाण मोटी दीवार से टकरा कर औंधे मुंह ही गिरेंगे। एक दिन दीवार दरक गई। सावित्री के नामवर श्वसुर तिल्ली फटने से अचानक स्वर्ग सिधार गए। रतन बाबू का रहा सहा अंकुश भी जाता रहा। फिर तो रतन बाबू ने वे परवाजें भरीं कि कुछ पकड़ में ही नहीं आया। कारबार में हिस्सेदार भेड़िया घसान करने लगे। इससे बचा हुआ गुमाश्ते डकार गए। रतन बाबू के पास फुरसत कहाँ थी कि इधर मुंह ही कर पाते। तब बारी आई सावित्री की। अपने पति-परमेश्वर की भक्ति में बड़े घर की इस सती-सावित्री की परीक्षा होने लगी। भारी भारी गहने रतन बाबू की शौकीन-मिजाजी, जुआखोरी और एक एक तोला अफीम की कीमत चुकाने में निकलने लगे।

'सावित्री, कल तेरी औलाद बड़ी होगी। यही हाल रहे, तो क्या खिलाकर पालेगी? कुछ तो दबाकर रख।' सावित्री को सारे अपने बेगाने दुनियादारी सिखाने लगे थे। यह सावित्री भी पति के निमित्त सर्वस्व होम देने की छुट्टी लेकर आई थी, इस सीख के अमल में पतिता होने का खतरा कैसे न समझती?

और एक दिन सावित्री ने पाया कि उसके आसपास कोई नहीं है। रतन बाबू के बहिमाब दोस्तों का ताता टूट चुका है। चाचे, ताऊ, फूफे कोसों दूर छूट गए हैं। वह निपट अकेली और असहाय है—अपने पतिदेव की उसे दी हुई दुनिया में। इस दुनिया में उसकी अशक्त बूढ़ी सास, अबोध देवर और अपने खोल जाए लाडले के सिवाय कोई और है, तो सिर्फ रतन बाबू। फिर सास ने भी आँखें मूंद लीं। श्रीकांत का अफीमची भाई की छत्रछाया में पलते देखकर बहनें पसीज आईं। पढ़ाने के बहाने एक बहन ने उसे अपने यहाँ कलकत्ता बुला लिया। अपने बड़े घर के बड़प्पन की दुम तक श्रीकांत के हाथ नहीं लगी। वह यहाँ वहाँ भटकत-

भटकते ही जवान हुआ।

सावित्री की दुनिया और फली, तो उसमे राजू और सीमा भी चले आए। सावित्री का कई बार लगता है कि सबकुछ उसके अनजान ही होता गया है। उसे जैसे अपने पर ही विश्वास करना पडता है कि वह तीन बच्चा की मा है—मा! सीमा का आगमन तो कल की बात है, पर यह कल बीत जैसे अनतकाल बीत गया। इन दिनो रतन बाबू पर बुढापा आया नही, कही से बरसा है। और सावित्री? उसके साथ उम्र नही, सिफ एक अधी गति है जिसम देह नही फकत मन बूढा होता है।

यहा आने तक उम्मीद नही झटकी थी सावित्री न। बडी कडाही की खुरचन बटोरने वाले अ दाज म तोब तोब जोडकर उसने रतन बाबू को परचून की दुकान खुलवायी थी। कितनी निरीह निकली सावित्री की यह उम्मीद! यहा स उसकी गहस्थी की गाडी और भी भयानक ढलाना का रुख करने लगी। एक पुश्तैनी मकान रह गया था जिसम सावित्री अपने बच्चा समेत सिर छिपाए बैठी थी। रतन बाबू की जुबान पर एक ही बात थी—इसी का बेचकर नया कारबार शुरू करने की। अतिम साँस लेता सावित्री का भरासा दम ताडने लगा तो उसन अपन पर वार ही कह डाला, 'पहले हम चारो को कुएँ म धकेल दो फिर नया कारबार शुरू करना।"

इसी दौर मे श्रीकात लौटा।

'भैया अकेले मकान बचेंग कस? उसमे मेरा हक भी तो है। भाभी, मुझे गलत न समझें मैं आपसे हक नही जतला रहा। सिफ मकान को बिकन से रोकना चाहता हूँ।" हालात ताल-परखकर यही कहा था श्रीकात ने।

आँधी सँभली लगती है। पल्ला पर हवा की चीखें धीमी हो गई हैं। बल्ब फिर जल गया है। अँधेरे म अभी-अभी जमा यह क्षीण उजाला भी कीमती सा लगता है सावित्री को। कलाग, राजू और सीमा को भली प्रकार कपडा ओढाया उसने। उधर देखा रतन बाबू का तकिया लार से गीला हो चुका है। गमछा खींचने बढते हाथ म ऐंठन सी क्यो हुई आज!

सावित्री ने हाथ रोक लिया। शायद वह समझ रही है कि इस लार का सिलसिला पोछने की हद से गुजर रहा है।

सावित्री की निगाह उलझकर रह गई है—अपने पतिदेव के चेहरे पर। चालीस के आसपास की अवस्था मे खिचडी, रुक्ष बाल, भीतर धँसी आँखें और हड्डियन चेहरा। क्या यही है उसका चाद सरीखा सुरूप वर? एक फाँस-सी खटकने लगी है सावित्री के मन म। यही वह आदमी है, जो सनक की हद तक सावित्री को पर्दों म रखता था। कमरे की खिडकिया खुली रहने की सख्त मनाही थी। घूघट सूत भर उठा रह जाता तो इसे गुस्सा आन लगता। दस बरस का बच्चा भी सावित्री से मिलता, तो यह उसम पर-पुरुष की गध सूघने लगता। अपने परम मित्रा मे से भी शायद ही किसी को इसने सावित्री का मुखडा दिखाया हो। दुल्हन बनने तक सावित्री स्कूल जाती थी, बहू बनने के बाद नही गई। घराने की बहू भला किस प्रयोजन से पढन जाती? परदेश कमाने गए पति परमेश्वर को पत्र लिखने से बढकर औरत की पढाई का मोल ही क्या? इतनी योग्यता तो सावित्री साथ लेकर आई थी।

यह व्यवहार सावित्री के लिए कुछ भी बजा न था। उलटे वह इस फिक्र मे घुली मरती थी कि रतन बाबू उसकी ऐसी देखभाल कम न कर दें। सावित्री को रतन बाबू के इस समूचे व्यवहार म अपने प्रति उनका पति प्रेम ही नजर आता। इस कथा को वह एक अबोल असोच स्वीकार के रूप म सतीत्व का जगमगाता जेवर समझकर पहनना पसद करती थी। अब यही सावित्री को लगता है कि उसे पर्दों म छिपाने की सनक के पीछे छिपानवाले के अपन मन का चोर ही तो नही था? यह चोर सावित्री के असती हो जाने का डर हो नही था क्या? यही था, तो आज वह कौन ऐसी बढी हो गई है कि चाहे तो और सहसा सावित्री को लगने लगता है कि वह अपना नही, किसी और का बुढापा ढोन को विवश है। सोचत सोचत सावित्री का काया की ऐसी सुध आई कि अपने ही हाथ से उसने खुद को ऐडी से चोटी तक सहला डाला। उसे अपनी काया म झकार-सी सुनाई देन लगी, धीरे-धीरे एक साफ आवाज बनकर उभरी—एक ऐसी आवाज जो फक्त औरत की होती है, 'नही सावित्री,

तेरी काया को फकत अन्न की ही जरूरत नहीं है अभी।'

कैलाश नींद में कुनमुनाया, तो सावित्री उधर देखने लगी। वह कोई सपना देख रहा होगा। उसने पहले मुंह सिकोड़ा और फिर मुस्करा पड़ा। सावित्री को उसे मुस्कराते हुए देखकर हंसी आई, "मेरी काया का न सही, काया के हिस्सों की जरूरत तो फकत अन्न ही है। मैं अपने लिए नहीं, अपनी काया के इन हिस्सों के लिए हूँ क्योंकि मैं औरत नहीं सिर्फ मां बन गई हूँ, बस मां।"

सावित्री ने हाथ बढ़ाया और राजू का सिर सहलाने लगी। सुख का धीमा विस्तार उसका रोम रोम सींचने लगा। एक आंसू ने अवतार लिया और उसकी आंखों से लुढ़क पड़ा। कितने दिनों में आया यह आंसू! इस अमोलक आंसू को सावित्री ने तर्जनी अंगुली की पोर पर थामा और कुछ ऐसे ताकने लगी जैसे यह कोई चमकता नगीना हो। फिर कुछ सोचती सी अपने से ही बोली, "कितना अच्छा रहा श्रीकांत चला आया वर्ना बच्चों के बेघर होने में क्या देर थी?"

श्रीकांत कलकत्ता से लौटा था। उसके मालिकों की एक सीमेंट फैक्टरी यहां थी—इस राजस्थानी कस्बे में। संयोग सधा कि उससे तबादले को पूछा गया, तो उसने इंकार नहीं किया। श्रीकांत ने अपने बहनोई के संरक्षण में पढ़ लिखकर नौकरी ही नहीं की, ब्याह भी कर लिया था। उसकी कलकत्ते की पत्नी बढ़ी ब्याहता साथ ही चली आई। फैक्टरी से मिले क्वार्टर में उसकी नई गृहस्थी जमने लगी। यहीं से गाहे-बगाहे वह अपने बिछुड़े हुए भैया-भाभी से मिलने आने लगा। अपने पीछे छूटे संसार की बेतरतीबी देखते देखते वह पसीजने लगा। ऐसी भावुकता न जाने कहां से बटोरी थी कि एक दिन अपने भैया से कह बैठा, "क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम फिर एक ही चूल्हे पर पकाया खाना साथ साथ खाने लगें?"

शायद चिनक में ही रतन बाबू ने हामी भर डाली। इस पर सावित्री की स्त्री बुद्धि में खटका-सा हुआ था लेकिन भोले देवर की निरीह सदाशयता के आगे चुप रह गई। इसके सप्ताह भर बाद ही श्रीकांत सबको यहां ले आया था। रतन बाबू को राजी कर हलके-फुलके काम के लिहाज

से एक लॉण्ड्री के काउण्टर पर बिठा दिया। पहले कुछ दिन आराम से कटे, लेकिन थोड़े दिन बाद सावित्री का खटका सच्चा हुआ। श्रीकांत और उसकी ब्याहता के बीच डरावनी चुप्पी के धनुष खिंचने लगे। श्रीकांत सहमा सहमा नजर आने लगा। इधर रतन बाबू ने धोबी की दुकान पर बैठकर खानदान की नाक कटवाना कबूल न करते हुए नौकरी छोड़ दी। दिन भर घर बैठकर बीड़ियाँ फूंकने लगे। काम के नाम पर दिन में तीन चार बार अपने लिए खुद ही गैस के चूल्हे पर अफीम के छूरे उबाला करते। ये छूरे खुद श्रीकांत को लाकर देने पड़ते। अपनी भाभी को थैला पकड़ाकर वह कहता, "भाभी, जब तक बन सके धीरज मत छोड़िएगा। आप बड़ी हैं, वह छोटी—यही समझ लें। फिर मेरी बात दूसरी है, वह आप सबको धीरे धीरे ही अपना मान सकेगी न!"

सावित्री श्रीकांत का भीतर-भीतर टूटना देख रही थी। उस पर जब-तब दुतरफा बौछारें बरसने लगी। एक तरफ उसकी अधिकार सजग पत्नी थी, तो दूसरी तरफ बड़प्पन की ग्रंथि से जकड़े भैया—जिन्हें पग पग पर अपना और खानदान का अपमान नजर आता। आखिर एक दिन श्रीकांत के भैया विदक ही गये। श्रीकांत ने बहुत विनती चिरौरी की, पर अपने घर उन्हें रोक नहीं पाया। शहर का पुश्तैनी मकान उसी के कहे से भाड़े चढ़ाया गया था, ऐसे में उन्हें बेघर कहां भेजता? फिर अपनी ही पहल से यह पिछवाड़ा लेकर भैया भाभी को बसा डाला उसने। थोड़े दिनों में ही सावित्री ने पाया कि कस्बा उसकी गृहस्थी चलाने के लिए रास्ता और सरन रहेगा। अपने पतिदेव को सावित्री ने बड़ी हील-हुज्जत के बाद मनाकर यहीं रोक लिया। रतन बाबू शायद इसीलिए मान गए कि छोटी ही सही, पुश्तनी मकान भाड़े चढ़ाने से एक बँधी बँधाई आय घर बैठे ही शुरू हो गई। बदले में यहां किराया नाममात्र का था।

"यहाँ फिर भी आराम रहेगा।" हारकर श्रीकांत ने यही कहा था। सावित्री भांप गई कि श्रीकांत अपना ही दिल बहला रहा है। बस एक श्रीकांत ही समूची दुनिया में सावित्री के लिए किसी भरोसे का नाम है, लेकिन हजार हजार बार सोचे बिना नहीं। उसकी सीमाएं निर्धारित हैं, जिससे थोड़ा भी पार निकलने पर उसके खानदानी भैया का अपमान हो

जाता है। अपन भतीजो के लिए एक बार कपडे ला देने पर उसक भया चिहुँक पडे थे, "मैं मरूँ, उससे पहले किसी को मुझ पर महरबानी दिखान की जुरत नही करनी चाहिए समझी !"

नौजा बिसायतन के मुर्गे न बाँग दी—कुकड़ू कू ! उधर मस्जिद के माइक पर अजान सुनाई दी—अल्ला हो अक्बर ! भार होन लगी है। कुछ देर म पडोस क जगी जाल-वक्ष म रातबासा लिए बठे पखेरू पख फडफडाएँग और चोच खोलेंगे। भोर अपन एक-एक लक्षण से सावित्री को पुकारने लगी। यह भोर इसी के लिए तो सावित्री ने रात आखा म निकाली है।

"उठ भई सावित्री छ बजे पहुँचने का जा कौल किया है तून हवेली स।' सावित्री ने खुद से ही जतलाया। हवेली—अलसवेरे ही जैसे सावित्री के मुह म मुट्ठी भर नमक भर आया—थू ! थूका उसन, "छि छि कैसी ओछी हरकत की दूसरो को आदमी क्यो नही समझन ये लाग ?"

कहाँ तक काबू मे रखे सावित्री ! काई इस तरह छीलने पर ही उतर आए तो क्या उफ् भी न करे ? पहले दिन हवेली पहुँचने पर इसी बड़ी सेठानी ने बेशर्मी से पूछा था, "सच है क्या री सावत्तरी, कि तरा घरवाला धेला भी नहा लाता। तू उसे बिठाकर खिलाती है ?'

सावित्री चुप रही, तो सठानी अपनी जानकारी का बखान करने लगी, 'मैंने यह भी सुना है कि तेरे ब्याह म ससुराल से तुझे तकडी म तोल कर सोना मिला था।"

"समय समय की बात हाती है न ! बेमन स हसकर टालना चाहा सावित्री ने।

'कुछ धरा है, या खा पी लिया सारा ? उलीचे से तो कुएँ भी खाली हो जाते हैं ।'इस बार चाकू-सा लहलहाया सठानी न, फिर भी सावित्री ने मैदान नही छाडा और मुस्कराकर काम म उलझ गई।

"कल कल हद कर दी इमन !' सावित्री क फिर से शूल गडन

लग।

साँझ हुए सावित्री घर लौट रही थी। कमरे से शॉल लेकर निकली, तो यही सवाल पूछनेवाली सेठानी ठोगा लिए खडी थी। कुछ देर पहले सावित्री ने एक पिलपिले बच्चे को थाली पर अघाए बैठे देखा था। उसके आगे घेवर का टुकडा पडा था, जिसे वह खा नही बल्कि घूर रहा था। जूठा छोडकर उठा, तो किसी न उसे सावित्री के सामन ही कान पकडकर वापस बिठाया था, "खा, खाना पडेगा लिया तब नही देखा? असली घी का घेवर है, जूठा छोडकर कुत्ता का डालने को नही है।"

सावित्री ने ठोंगा हाथ मे लिया कि उसकी नजर थाली पर पडी। उसमे मामूली जूठन थी और बच्चे का अता पता ही नही था। अगले ही पल सावित्री ने ठोगा खोलकर देखा—छि! ठागे मे वह टुकडा मौजूद था। सामने सेठानी मुस्करा रही थी, "सावत्तरी ।"

"ठीक हुआ कि मैंने बडी सेठानी से कुछ नही कहा।" बिस्तर छोड कर उठते हुए सावित्री सोचने लगी, "रीस निकालकर सारे रास्ते बन्द कर लेती। उम्मीद तो सातवें दिन फलनी है, तीसरे दिन ही बात बिगड जाती। क्या पता, तीन दिन की महनत भी अकारथ जाती! एक बार जस लेकर ब्याह की रसोई सँभालकर दिखा द, तो यही सेठानियाँ गज करती आएँगी मेरे पीछे पीछे फिर काई पूछेगा तो बताऊँगी कि मरा खसम ।"

कदम बाहर रखते ही जाल के पखेरुओ न कठ खोलकर सावित्री का स्वागत कर डाला। सावित्री ने मुस्कराकर इस सामूहिक चहक की दिशा म दखा। बेशक अपनी काया सावित्री को भारी भारी लग रही थी, पर चहक सुनकर उसका मन पखेरुओ की पाँखो सरीखा ही हलका हो आया। दरवाजे पर खडे खडे पलटकर उसने अपने तीनो बच्चो को निहारा और रसोई की तरफ पानी गर्म करने की मशा से चल दी।

कुछ देर बाद सावित्री कमरे मे लौटी। कैलाश का सिर सहला-सहलाकर उसे एसे पुकारने लगी जैसे कल की भोर भी आज ही जगा लेगी, "उठ, उठ जा मेरे लाल! दख, सवेरा निकल आया।"

पुण्य-स्मरण

यह 'क' शहर भी बडा अजीब शहर है।

इस अधकचरे शहर का पता नही क्यो जिला मुख्यालय का दर्जा दिया गया है। मुझे यह बात ही बहुत कठखनी लगती है, पर जाएँ तो जाएँ कहा ? यह नौकरी जा करनी है।

सारा दिन जूते घिसने के बाद यह कमरा मिला है, कमरा क्या डब्बा कहिए। ऐसे निर्माण किया गया है जैसे आदमी नही, घोडे आएँगे इन्हें किराए लेने। न हवा के लिए खिडकियाँ और न कपडे लटकाने को खूटियाँ। दरवाजे इतने नीचे कि मेह बरसा नही कि पानी अन्दर ! उस पर किराया ! मत पूछिए, सुनते ही कलेजा मुह को आता है।

मै अकेला नही हूँ यहा। इस कतारबद्ध दडबा मे हम पूरे चौदह किराएदार है। दो तो मेरी ही श्रेणी के सरकारी कर्मचारी हैं, एक जन प्रत्याय विभाग का पम्प ड्राइवर और शेष सब विद्यार्थी।

मैने पहले दस दिना म ही सबसे मेल मुलाकात बना ली। सुबह को दफ्तर पहुँचने की उतावल रहती है पर शाम फुसतवाली होती है। हर कमरे से स्टाव्ह की गूज सुनाई पडती है, जिसम सगीत की गुजायश निकालकर इसी वक्त पम्प-ड्राइवर एक कनस्तर बजा-बजाकर गाने लगता है—दडबा के आगे, खुले मदान म एक नल लगा हुआ है जो बन्द करने के बावजूद टपकता रहता है। नल के नीचे भीलवाडा की प्रसिद्ध पट्टी का एक चौकोर टुकडा पडा रहता है। नल खुलते ही इस पर पडती पानी की धार छितराने लगती है, ठीक उसी तरह जिस तरह हम सब दफ्तरो या

स्कूल कॉलेजो की ओर छितराते है।

शाम को हम अपनी-अपनी रोटिया बिना उतावल के सेंकते हैं और स्टाव्ह बन्द करने के बाद चौगान मे इकटठा होते है। बनियानें खोल लेते हैं और उनस गम जिस्मा पर हवा करते है और हाथा पर तो बेसब्री से मुह से ही फूके देने लगते हैं, ऐसे जैसे कोई खाने से पहले गम ग्रास ठण्डा करता हो।

पहले पहले कुछ दिन मुझे लगा कि अपने हाथा से रोटिया सेंकने पर भूख खुल जाती है। इन दिना म खाने बैठने का लुत्फ ही कुछ और रहा। अब लगता है कि भूख तो लगती ही होगी, पर लुत्फ जाने कहा मर-खप गया।

यहा इस तरह की व्यथ अनुभूतिया होती ही रहती ह।

वह कोई ऐसी ही अनुभूति का क्षण रहा होगा, जब देवधर मेरी ओर कुछ याद करता सा आ रहा था। हम चादह लोगा मे कौन किसका कम या ज्यादा शुभचिंतक है यह ता मैंने तोला परखा नही था, पर इस देवधर का भावपक्ष मुझे शुरू से ही कुछ अपने प्रति अधिक उदार प्रतीत हुआ था। पता नहीं मेरा कौन सा रूप उसे आदरयाग्य लगा कि वहा एक दूजे को नाम से पुकारने की खुली परम्परा के विपरीत वह मुझे 'भाई साहब' कहने लगा था। अवस्था म वह जरूर मुझस कुछ छोटा होगा, पर यह कौन सी एसी बडी बात है भला।

खर, तो देवधर अपनी ठौर से छुटे हुए तीर की तरह चलकर मेरे करीब पहुँचा। इतनी ही बेसब्री से बोला, "भाई साहब, आप शिक्षा विभाग म है न?"

"हाँ, देवधर!" मैं मुस्कराया, "यहाँ तो सभी जानते हैं यह बात।"

"जानते तो है, लेकिन ।"

"लेकिन क्या, देवधर?"

"यही कि एक बार पूछकर तसल्ली कर लू।" वह लजाना-सा बोला। फिर अपनी गदन नीचे झुका ली।

मुझे यह उसका भोलापन जान पडा और मैं मुस्कराता रहा।

"भाई साहब, एक जरूरी पूछ-ताछ करनी है।" वह मुह पर मलिनता लिए बोला। मुझे अपने मुस्कराते रहने पर पछतावा होने लगा।

मैंने गम्भीर होकर उसके मुह की तरफ देखा।

"मृत सरकारी कर्मचारी की सन्तान ।" कहकर मेरे और करीब सरक आया और उसकी आवाज हाथ में छूटे कांच के बरतन की किरचिया-सी बिखर गई।

देवधर !" मैंने उसके कधे पर हाथ रखा क्योंकि अचानक ही वह मुझे कुछ भयभीत नजर आया।

वह चुप।

"देवधर तुम कुछ पूछ रहे थे न ! क्या हुआ तुम्हें अचानक ?"

वह फिर भी चुप।

'हाँ, मृत सरकारी कर्मचारी की सन्तान के बारे में बोलो तुम्हें क्या पूछना था ?" मैंने देवधर को स्नेहपूर्वक और तसल्लीबख्श लहजे में झकझोरा, पर वह तो जैसे पथरा गया था।

भीतर ही भीतर मैं झुंझलाने लगा।

मैं थोड़ा पीछे सरककर खड़ा हो गया और देवधर मुड़कर लौट गया। उसे जाते देखकर मुझे लगा कि उसके मन की कोई तकलीफ सिर्फ चेहरे पर ही नहीं, उसकी आकृति पर भी हावी हो गयी है।

इसके दूसरे दिन। नीची छत वाले इन दड़बों की सामूहिक छत हम सबका सामूहिक क्रीड़ागार भी है। हम बाउण्ड्री वाल पर पैर रखकर बिना सीढ़ियों की इस छत पर पहुँच जाते हैं और एक दूजे के बिछावन भी ऊपर खींच लेते हैं। फिर रात होती है तारे होते हैं, शुक्ल पक्ष हो तो चाँद भी होता है और नित की नित बासी होती जाती बातें दोहराते हम होते हैं। इन बातों में नौकरी, सिनेमा मार पीट के अलावा भी कुछ होता है जो यहाँ बताना मुनासिब नहीं जान पड़ता। हाँ संक्षेप और संयत भाषा में उसे स्त्री पुरुष सम्बन्धों की गुप्त बातें कहकर काम चलाया जा सकता है। इन घिस घिसकर बदशक्ल हो चुकी और, और होती जा रही बातों के प्रति कुछ उकताहट हो, तो वह फकत मुझमें ही ढूंढी जा सकती है। पर मेरी यह उकताहट इतनी अभिजात्य अभी नहीं कि यहाँ रहना ही असम्भव जान पड़े।

कल देवधर के कुछ कहते कहते अनमने लौट जाने से मेरा मन भी

अभी तक अनमना था। मैं खा पीकर बाहर निकल गया था और लौटा तब तक भाई लोग छत पर पहुँच चुके थे। पम्प ड्राइवर एक हरियाणवी राग गा रहा था, जिसकी भाई लोग कुछ ज्यादा ही जोश से दाद दे रहे थे। लगता था कि तारों के मद्धिम उजास म हर कोई अपन मन की गठरी खाल चुका था। हरियाणवी रागे अपन जिस खिलदडपन के लिए प्रसिद्ध है, ठीक वही स्वाद पम्प ड्राइवर के गाने का था। चाहे तो कोई नाक भौं भी सिकोड ले इस पर।

मैंन अपना बिछावन झुड से कुछ दूर हटकर बिछाया और इस मौज-मस्ती म आज शरीक न हो पाने की माफी माग ली।

कुछ देर हुई कि गली के उस पारवाल अपन मकान की छत पर खडे होकर वकील साहब ने ऐतराज उठाया कि यह कोई लफगो का माहल्ला नही, जो छत पर चढकर शोर मचाया जाए।

"चुप करो!" गाने और सुनने वालो का कही गई इस रीस भरी आवाज से मैं चौक गया। यह तो देवधर की आवाज थी। मुझे अचम्भा हुआ कि देवधर इस तरह चीख भी सकता है।

"देवधर ।" मैंने जोर से पुकारकर कहा, "तुम यहा चले आओ।"

पर वह अभी भी सबको चुप करने म सचेष्ट रहा।

"इस वकील की तो ।" यह सनसनाती उक्ति अँधेर म किसी न तलवार सी लहरा दी।

'देवधर ।" मैंने फिर हाक लगाई।

इस बार उसन सुना और मैंने देखा कि वह आ रहा था। इतना उजास नही था कि उसके चहरे की लकीरे पढी जा सकती, पर उसका गुस्सा उसके चाल से ही प्रकट था। वह आकर मेरे बिछावन पर टूटी डाल की तरह गिर पडा।

'ये शोर मचाते हैं, तो तुझे क्या? तू अपना खून क्या जलाता है?"

वह नही बोला। मैं उसे गौर से देखने लगा। देखता क्या उसके मौन मे कुछ सुनने की चेष्टा करने लगा। उधर गाना खत्म हुआ और तालिया बजन लगी। वकील साहब पैर पटकते नीचे चले गए होगे।

"तुम्ह गाना अच्छा नही लगता?" मैंने पूछा।

"मैं तग आ गया हूँ, पर कहाँ जाऊँ ?" उसने उत्तर दिया।

"कहाँ जाना चाहते हो तुम ?"

"भाई साहब इससे तो ठीक था कि भेडें चराता, माटी खोदता और मजदूरी करता ।"

मैं उसकी इन असगत बाता म कुछ सगति खोजने लगा और अचभित रह गया।

'भाई साहब, मैं सचमुच तग आया हुआ हूँ वह फिर भी चीखता-सा बोला, 'आपसे बात करनी चाही आप भी मुझ पर हँसने लग ।"

"देवधर, मुझे कुछ पता तो हा कि बात क्या है फिर भी अनजान ही मैंने कुछ हलका-पतला कह डाला हा तो मुझे माफ कर दो भाई !" मैं उसे विश्वास मे लेने को लालायित हो गया और खुले मन से बिना कसूर की शिनाख्त किए ही माफी माग ली।

वह तब भी चुप।

हा, याद गया मुझे देवधर, तुम पूछ रहे थ कि मत सरकारी कमचारी की सतान एसा ही कुछ था न ? बोलो वह क्या बात थी ?'

'हा, भाई साहब मैं ही हूँ वह सतान।" वह बोला।

"तुम ?"

'हा, मेरी मा सरकारी स्कूल म चपरासिन थी।"

'पर अब इससे तुम्हे क्या करना है ?"

'मैं जल्दी से जल्दी नौकरी पाना चाहता हूँ। मुझे इतने दिना पता ही नही था कि नौकरी मे रहते हुए मरनेवाले सरकारी कमचारी की किसी एक सतान को सरकार नौकरी दती है ।"

"हा यार यह है तो सही। मरे दफ्तर म ही एक ऐसा मामला दखा है मैंने। इस बार मैंने भी उत्साह से हामल भरी।

"ता यह सही है, भाई साहब ?" देवधर उठ बैठा।

'हा देवधर ।"

उधर भाई लोगा के झुण्ड म से हँसी का तूफान उठा।

"लेकिन तुम तो अध्यापक के प्रशिक्षणार्थी हो !" मैंने देवधर को और टटोलना चाहा।

"इसमे तो यह पूरा साल लगेगा।" वह सहमा सा बोला, "फिर क्या गारण्टी है कि प्रशिक्षण मैं पूरा कर लूगा और कर भी लिया तो हाथो-हाथ मास्टरी मिल जायेगी!"

"भाई साहब " वह फिर बोला, "आपको कसे बताऊँ, मुझे अब नौकरी की सख्त जरूरत है। मेरे पिता मुझे जन्म देते ही एक्सीडेंट म मर गए थे। मुझे उनकी शक्ल तक याद नही फिर माँ ने मुझे किसी तरह पाला पोसा और खुद सरकारी स्कूल म चपरासिन लग गई। अचानक उसे भी बीमारी ने दबोच लिया और आधे-अधूरे इलाज से वह बच नही सकी। उस मरे बारह बरस हो गय हैं। मुझे रिश्तेदारो ने यहा तक पहुँचा दिया अब आगे कहाँ जाऊँगा ।"

"देवधर!" मुझे उसे तसल्ली देने के अपने अन्दाज का खोखलापन साफ नजर आन लगा, पर तब भी इसके सिवाय मेरे पास क्या था? मैंने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

कुछ देर की चुप्पी के बाद वह फिर बोला "मुझे दो तीन दिन पहले ही पता लगा कि मुझे नौकरी जल्दी ही मिल सकती है तो इस आधार पर कि मरी माँ नौकरी म रहते रहते ही मरी थी मैं उसी माँ का तो बटा हूँ।"

उसकी पूरी बात सुनकर मेरे उत्साह की चिदियाँ उड गईं। बारह वप के अर्से पहले ऐसा कोई नियम नही था, और नियम बनने के पूव की तिथियो के किसी मामले पर विचार सम्भव नही होता। देवधर को आस बँधाने वाले के अधूरे ज्ञान पर मन ही मन कुढने के अलावा मेरे पास कोई चारा नही बचा, पर तब भी मेरी हिम्मत नही पडी कि उसकी उम्मीदो पर इसी क्षण पानी फेर दू।

"भाई साहब, क्या हुआ मेरे दसवी ग्यारहवी पढने से इन शहरो ने मुझे मेहनत-मजदूरी से भी खो दिया।" देवधर फिर बोलन लगा।

अबकी बार मैं चुप। क्या कहता। देवधर जस अपने मुह से मेरी बात कह रहा था। फक था तो फक्त इतना कि मुझे अचानक बाबूगिरी हाथ लग गई थी। मैंने सोचा, मेरी यह अमीरी और बडप्पन था, जिसका देव-धर के निकट इतना बडा सम्मान था।

देवधर थककर चुप हो गया। तसल्ली दने के लिए मुझे कई बातें सूझी, पर मैं कह नहीं पाया। चुपचाप, दवधर की अधकार मे डूबी हुई आकृति म उसका चेहरा ढूढन लगा। कही से अवाछित बादल चले आए थे और तारा का उजास भी अब गहरा गया था।

"भाई साहब आप अपने दफ्तर के मामल की पूरी पडताल करना। मुझे माँ की वजह स नौकरी मिल सकती है। माँ नौकरी करते करते मर गई थी। बात पुरानी है, कही इस वजह से तो नही शायद इस मामले पर विचार हो सकता है। उस वक्त माँ के वालिग स तान थी ही नही। अब मैं हूँ ता सरकार नौकरी दे ।"

उधर भाई लोग न जाने किस बात पर एक बार और ठहाको से आसमान छू रहे थे। मैंने उधर दखा। वकील साहब के रोशनदान से गली मे छिटकता बल्ब का उजास भी अब शेष नही था। वे शायद तग आकर सो गये थ।

भाई लोगा पर हँसी के दौरे पड रहे थे। ठहाके, और ठहाके गूज रहे थ।

देवधर ने निढाल होकर अपना सिर मेरी गोद म रख दिया था। मैं उसके रूखे सिर मे धीम धीमे अँगुलियाँ चलाने लगा। क्या इस पूरे साल सारी दुनिया म जो साल देवधर को समर्पित कर मनाया जा रहा है, देवधर का इसी तरह निढाल रहना है।

दवधर ने एक बार सिर उठाया और बुदबुदाते हुए कहा, "भाई साहब, मेरी माँ स्कूल म चपरासिन थी ।"

नायक-नायिका

उससे आज टालना नहीं हो सका। फलत वह सिनमा देखने जा रहा था, पत्नी को साथ लिए। उसकी चाल म तेजी थी जबकि पत्नी सुस्त सुस्तचल रही थी। जब जब उसका पत्नी के साथ चलने का काम पडता है, यही शिकायत रहती है। दोनों के मध्य एक फासला बनता-मिटता रहता है।

ठहर ठहरकर उसे यह फासला पाटना होता है, लेकिन यह फिर बन जाता है।

"मुझसे आपकी रफ्तार स नहीं चला जाता। तांगा ले लो!" पत्नी ने चलते ही कहा था।

'अरे कैसी बात करती हो, साथ का लुफ्त तो पैदल चलने पर ही आता है!" कहकर वह पत्नी म तांगा भाडा बचानेवाली गृहस्थिन सुलभ समझ ढूढन लगा था। वह पैदल चलने से इकार करने मे बच्चा की तरह मचलने लगा, तो इसी बात को इस बार फामूले की शक्ल म इस्तेमाल किया, "पैदल चलने का आनन्द निराला होता है। झूमते टहलते जा रहे हैं, और फिर तुम कहोगी तो आते हुए तांग म चले आएंगे।"

फटाफट बोल गया वह। फिर सोचने लगा, 'यह अपनी जरूरत म ज्यादा भाषा का महत्त्व नहीं समझती। यह बाद मे जरूर पूछेगी कि निराला आनन्द क्या होता है?'

हाँ, इसके आनन्द का अर्थ बहुत सीमित है और मुझसे अलग भी दस बरस म भी एकाकार नहीं हो पाए हैं। यह ऐसी व्यथा है जो मेरे साथ

नहीं। वह उसे यूँ भी उलाहना देती है कि वह हर वक्त अपने दोस्तों में मशगूल रहता है। पत्नी के चेहरे पर उसे लगा ढेर सारी मक्खियाँ भिन-भिना रही हैं।

अच्छा हुआ, इसी वक्त घण्टी बज उठी। लोग दरवाजे पर जुटने लगे।

"यार, मैं स्कूटर यूँ ही छोड़ आया हूँ तुम सब ठहरना, मैं अभी आया।" केशरी बोला और मुड़कर सीढ़ियाँ उतरने लगा।

भीड़ हॉल में समा गई।

वे तीनों बाहर खड़े रह गए। उसकी पत्नी अब केशरी की पत्नी के ऐन पास खड़ी थी और वह थोड़े फासले पर दूसरी ओर देखता खड़ा था।

"चलो एक एक कप चाय पी लें ,,

केशरी की पत्नी ने ऊँचा बोलकर प्रस्ताव रखा और बिना किसी सहमति की प्रतीक्षा के कैंटीन की ओर मुड़ गई। उसकी पत्नी ने विस्तृत आँखों से उसे घूरा। उसने आँखें फेर लीं।

"केशरी ने बहुत देर की, न ?' अपने को सामान्य करने की दिशा में बढ़ने की चेष्टा करते हुए उसने पूछा।

'सिगरेट पी रहे होंगे मेरे साथ होने पर जनाब को यह सबसे बड़ी मुसीबत होती है। मैं इन्हें सिगरेट नहीं पीने देती।" अंतिम वाक्य का केशरी की पत्नी ने काफी तल्खी से कहा।

"आप उसे सिगरेट पीने से क्यों रोकती हैं ? इतनी क्या बुराई है?" उसने कहने की सोची पर कहा नहीं गया।

'मैंने ठीक अनुमान लगाया था आप काफी गम्भीर मिजाज के आदमी हैं।" श्रीमती केशरी चाय के नेपकिन देकर पलटते हुए कहा।

उसने चुपचाप सुना। यह बात किसी दूसरे मौके पर सुनने को मिलती तो खुशी होती। फिलहाल ताने की तरह लगी।

"अभी पिछले दिनों इन्हें दौरा पड़ा।" केशरी की पत्नी जैसे उसकी ...रता के अनुरूप हो रही हो, बोली, "डॉक्टरों ने कहा कि इन्हें खुश ...चाहिए। ...चा, इन्हें दिल की बीमारी नाखुशी से नहीं हुई। ...न हैं। शराब और सिगरेट से यह हालत बनी

केशरी उसका कोई ज्यादा करीबी दोस्त नहीं है। पर इस वक्त केशरी को उससे हाथ मिलाता देखकर उसके पीछे आ रही महिला ने भी उससे नमस्ते की।

"तह हमारी श्रीमती हैं।" केशरी ने उस महिला का परिचय दे डाला और उसका भी ?

अब वे चार हो गये और शो खत्म होने की प्रतीक्षा करने लगे। इसी बीच केशरी ने किस्सा सुनाया कि कैसे वे भीड देखकर पहले निराश हुए, फिर उसकी श्रीमती जी ने अपने तजुर्बे से 'ब्लेकियर' ढूढा।

"ये अक्सर आपके बारे मे बात करते रहते हैं।" केशरी विश्राम लेने लगा, तो श्रीमती केशरी बोली।

"मेरे बारे म ?" उसने चौंककर पूछा।

उसे ऐसी बात की केशरी से कभी उम्मीद नहीं थी। केशरी की पत्नी से तो पहली मुलाकात है। केशरी अपनी पत्नी के सामने क्या बात कर सकता है ?

"क्या कहता है यह ?" उससे काफी कठिनाई से पूछा गया।

"वह चाहे कुछ भी हो, लेकिन मुझे आपसे मिलकर खुशी हुई है।" श्रीमती केशरी बोली।

उसने प्रश्नवाचक दृष्टि से केशरी को देखा।

"अरे, कुछ नहीं कहा भाइ बस, तुम्हारे सुनाए हुए एक दो लतीफे इन्हे भी सुना दिए और तुम्हारा नाम भी बता दिया।" केशरी एकमुश्त बोल गया और जैसे यह कोई लतीफा ही हो, ठहाका लगाकर हँसने लगा।

वह स्तब्ध हो गया।

केशरी और वह मिलने पर आपस मे 'नानवेज' लतीफे सुनते-सुनाते हैं। उसे पिछली मुलाकात म अपना सुनाया हुआ ऐसा ही एक लतीफा याद आया। फिर उसके लिए उन दोनो के सामने देखना भारी हो गया। वह एक आला किस्म का अश्लील लतीफा था। उसे लगा कि उसके कपडे तार-तार हो गए हैं और छिपानेवाले सारे अग बाहर झाकने लगे हैं।

आखिर एक उडती नजर उसने अपनी पत्नी पर डाली। वह उदास और अनमनी दीख रही थी। पत्नी को इस वक्त किसी का मिलना जचा

नहीं। वह उसे यूं भी उलाहना देती है कि वह हर वक्त अपने दोस्तों में मशगूल रहता है। पत्नी के चेहरे पर उसे लगा, ढेर सारी मक्खियाँ भिन-भिना रही हैं।

अच्छा हुआ, इसी वक्त घण्टी बज उठी। लोग दरवाजे पर जुटने लगे।

"यार, मैं स्कूटर यूं ही छोड़ आया हूँ तुम सब ठहरना, मैं अभी आया।" केशरी बोला और मुड़कर सीढ़ियाँ उतरने लगा।

भीड़ हाल में समा गई।

वे तीनों बाहर खड़े रह गए। उसकी पत्नी अब केशरी की पत्नी के एन पास खड़ी थी और वह थोड़े फासले पर दूसरी ओर देखता खड़ा था।

"चलो एक एक कप चाय पी ले "

केशरी की पत्नी ने ऊँचा बोलकर प्रस्ताव रखा और बिना किसी सहमति की प्रतीक्षा के कटीन की ओर मुड़ गई। उसकी पत्नी ने विस्तृत आँखों से उसे घूरा। उसने आँखें फेर लीं।

"केशरी ने बहुत देर की, न ?" अपने को सामान्य करने की दिशा में बढ़ने की चेष्टा करते हुए उसने पूछा।

"सिगरेट पी रहे होंगे मेरे साथ होने पर जनाब को यह सबसे बड़ी मुसीबत होती है। मैं इन्हें सिगरेट नहीं पीने देती।" अंतिम वाक्य को केशरी की पत्नी ने काफी तल्खी से कहा।

"आप उसे सिगरेट पीने से क्यों रोकती हैं ? इतनी क्या बुराई है?" उसने कहने की सोची पर कहा नहीं गया।

"मैंने ठीक अनुमान लगाया था आप काफी गम्भीर मिजाज के आदमी हैं।" श्रीमती केशरी चाय के पैसे देकर पलटते हुए कहा।

उसने चुपचाप सुना। यह बात किसी दूसरे मौके पर सुनने को मिलती तो खुशी होती। फिलहाल ताने की तरह लगी।

"अभी पिछले दिनों इन्हें दौरा पड़ा।" केशरी की पत्नी जैसे उसकी गम्भीरता के अनुरूप हो रही हो, बोली, "डॉक्टरों ने कहा कि इन्हें खुश रहना चाहिए। मैंने सोचा, इन्हें दिल की बीमारी नाखुशी से नहीं हुई। ये खुश तो पहले ही बहुत हैं। शराब और सिगरेट से यह हालत बनी

इनकी। मैंने दोनों बन्द कर दी।"

"दिल की बीमारी और केशरी का ?" उसने अचम्भे म पूछा, उसने कभी बताया तक नही ?"

उसे लगा कि अब वह अपनी झेंप से मुक्त हो गया है। फिर पूछा, "उसे कब से है यह शिकायत ?"

"हमारी शादी के साल भर बाद से ही। तब मैं मायके गई हुई थी। पीछे से हुआ सब शायद मेरी याद मे हुआ हो।' कहकर श्रीमती केशरी ने विचित्र ढंग से आँखें झपकाईं और खुलकर हसी।

केशरी सीढ़ियाँ फाँदता आ रहा था। उसे केशरी को लेकर डर लगने लगा। इसका दिल कमजोर है यूँ कूद कूदकर नही चलना चाहिए। पर केशरी भरपूर मस्ती मे दीख रहा था।

"सॉरी बेरी सारी क्या हुआ कि निचले दर्जे म मेरा एक दोस्त फिल्म देख रहा है वही मिल गया।' केशरी ने सामूहिक क्षमा-याचना करनी चाही।

"मैं ठीक कहती हूँ तुम्हारे सब दोस्त निचले दर्जे के हैं।" केशरी की पत्नी ने सुनककर कहा। यह बात मजाक मे थी, या गम्भीरता से की गई, उसे कुछ निष्कर्ष हाथ नही लगा।

"चलो, चला पिक्चर शुरू हो चुकी है।" केशरी अनसुनी करता बोला।

केशरी की बात सही थी। फिल्म शुरू हो चुकी थी। अँधेरे म केशरी और उसकी पत्नी एक ओर बढ गए। वह टाच से इगित कुर्सियो की ओर पत्नी का हाथ थामकर बढता रहा। और सीट पर बैठते ही, पता नही किस भावावेश म उसने पत्नी का हाथ खीचा और उसकी कलाई को हल्के से चूम लिया।

"चलते वक्त तो वे दोनो साथ नही होगे न ?" पत्नी ने कान के पास पूछा।

"आँख बचाकर निकलेंगे " उसने जवाब दिया और फिल्म देखने लगा।

लीला

"ह—ह—ह ऽऽ !"

मानो बिना अंतराल के तोप छूटी कहीं। कानों के मार्ग अट्टहास भीतर क्या पहुंचा, लोगों का कलेजा ठौर छोड़ने लगा। बालकों की तो चीख ही निकल पड़ी। कुछ लोग अपनी-अपनी ठौर खड़े हो गए थे, उन्होंने बैठने में लत्ता की से ही झाड़ ली। गर्द का एक बादल उठा और बिखर गया।

माईक के मुँह वही हँसी फिर सुनाई पड़ी। हँसी के पीछे गरजते बोल, "मंदोदरी! तू नहीं जानती? मेरा नाम रावण है, महाबली रावण, रावण, जिसने देवताओं तक के नीबू निचोड़ रखे हैं!" (माफ करें, मेरे यहाँ की रामलीला के संवाद लेखक मुहावरेदार भाषा को कुछ अनावश्यक ही आदर देते हैं।)

इस बार लोग भयभीत नहीं हुए। परन्तु कई, जो पहली दफा सोते ही रह गए थे, हड़बड़ाकर जाग गए। उचक-उचककर देखने लगे। क्या हो गया? लड़ाई झगड़ा तो नहीं! ऊपर के मोहल्लेवाले छोकरे बेहद शुबुद्धि।

लोगों का अनुमान सत्य निकला। उन्होंने रावण को पहचान लिया। बीकानेर के लाला महाराज! उन्हें छोड़ मंच पर ऐसे पैर दूसरा कौन पटक सकता है भला! दर्शकों की अन्तिम पंक्ति तक को धरती काँपती महसूस हो। और, हँसने की तो बात ही निराली। बालें, ना गले से गाले ही छूटें, "मंदोदरी! ह—ह ऽऽ !"

लाला महाराज की निनाम्न हान ही साग प्रसन्न हो गए।

"वाह! मजा आ गया। लाला महाराज के क्या कहने! रामलीला म अगर रावण ढग का न हो, तो राम की कौन सी बिसात कि अकेले रामलीला रच ले। रावण के बिना रामलीला फीकी धिक्कार! ऐसी रामलीला को।" मेरे बाजू बैठे एक दर्शक ने भाने भोले ही यह गूढ़ ज्ञान प्रकट कर डाला।

मच पर मदोदरी विलाप आरम्भ हुआ। रावण उस रोना छोड़ अशोक वाटिका के लिए प्रस्थान कर चुका था।

विलाप चाहे कैसा भी हो, गाने म आए बगैर जमता कहाँ है! मच के एक बाजू बैठे ढोलकिये ने थाप मारी। हारमोनियमवाले ने सुर छेड़े। गवय ने गला खोला। मदोदरी की तो फटत मुद्र एँ!

और, अचानक सज्जनकुमार मच पर पहुँचा। कधे पर आज धनुष बाण नही थे। लेकिन इससे क्या, दर्शक उसे दस बरस से पहचानते थे—राम! हाँ, यही तो सदैव राम का पाट करता है। राम ने आज सादी वेशभूषा म आकर माईक पकडा। ढोलकिये ने जोर से थाप मारी। हारमोनियम गात। गवैया चुप।

"हाँ तो सायबान कदरदान!" सज्जनकुमार की आवाज सुनाई पडी, "भक्त और भगवान की जय! रावण के अभिनय से खुश होकर तमाखीमलजी सि घी ने पाँच रुपये भेंट किए। बोलो सियावर रामचन्द्र की जय!"

"जय" के साथ साथ ढोलक की थाप बजी—धडिंग!

मदोदरी विलाप फिर शुरू हुआ।

फिर बन्द हो गया।

सज्जनकुमार फिर माईक पर, '(धडिंग) हा सा, सेठ साहब फत्तूमलजी की तरफ से ग्यारह रुपये सप्रेम भेंट। बोल सियावर '

इसी के साथ शोर उठा। लोगो ने मच से मुह फेरकर उधर देखा। दाई ओर भीड एसी हडबडाई जान पडी, मानो किसी ने पैरा म साँप छोड दिया हो। सदाबहार स्वयसेवक भाग। (सदाबहार स्वयंसेवक हरेक छोटे बडे शहर म हमशा होते हैं, जो बिना न्योते की प्रतीक्षा किए अपने

कतव्य पर आ डटते हैं) स्वयसेवकों के हाथों मे डडे थे। डडे फटकारते वे मौका ए वारदात पर पहुचे।

साप नही था। कुन्दन भगी था। दशका ने अब तक पहचान लिया था। पर वह आखिर चाहता क्या था?

"छोडो छोडो मुझे!" स्वयसेवकों की मजबूत गिरफ्त मे मरियल कुन्दन बल खा रहा था।

"बठ जा चुपचाप!" नामी पण्डित जेठमल कुछ दूरी पर खडे खडे उसे फटकार रहे थे।

उधर मच पर सज्जनकुमार और मदोदरी, दोनों भौंचक रह गए। अचानक यह नयी रामायण कहा शुरू हो गयी! ढोलकिये के हाथ ढोलक से चिपककर रह गए। हारमोनियम की हवा निकल गई। गवैया गाना भूल बठा।

लोगों को कुन्दन का अभिनय ज्यादा समय तक बाँध नहीं पाया। जो उठ चुके थे, वे वापस बैठने लगे। स्वयसेवकों ने उसे कुछ देर पकडे रखा, फिर धक्का देकर अलहदा किया। धक्का खाकर कुन्दन चोट से तिलमिलाए मकोडे की तरह वापस उसी दिशा मे लौटा। स्वयसेवकों के करीब पहुँचकर उसने अपनी जेब मे हाथ डाला। वापस निकाला, तो मुट्ठीभर रुपये। स्वयसेवक अचम्भित हुए। अचम्भा तो उन्हें अभी और करना था। दस-दस के दो और रुपये का एक नोट छाटकर कुन्दन ने उनके सम्मुख कर दिया।

"ले जाओ!" वह मुह नोचने की तरह बोला, "इस फतिय सेठ की तो माँ की! कह दो, कुन्दन भगी की तरफ से रामलीला वालों को ग्यारह की ठौर इक्कीस रुपये मिले!"

बोलने के साथ-साथ देशी दारू का एक बभास्त बाहर भभका जेठमल पण्डित के नथुनों तक पहुँचा। नाक पर हाथ रखते उसने तुरन्त एक ओपनी गाली दाग डाली। फिर किसी स्वयसेवक के पुकारकर देने पर रुपये पकड लिए। रुपयों से किस बात की छुआछूत!

रुपये मच पर पहुँचे।

सज्जनकुमार ने गला साफ किया। फिर, "(घडिग) ता भ क्लो!

कुन्दन हरिजन की तरफ से, मती मदोदरी के नाम पर इक्कीस रुपये सादर-सप्रेम समर्पित। बोलो सियावर रामचन्द्र की जय!" घडिग!

"इक्कीस" का उच्चारण उसने ऊँचा भी रखा और पिछले घडिग के पश्चात एक बार और बोल डाला "इक्कीस रुपये!"

वही जगह। वही कौतुक। लोगो ने मुडकर देखा—अट्टहास मे लाला महाराज को मान देने मे सचेष्ट कुन्दन अपने हाथ पैर उठा-पटक रहा था, स्वयसेवक सावधान थे। तुरन्त पहुँचकर उसे काबू मे किया। और जबरन बिठा दिया। एसी खुशी का यह तिरस्कार! अपने लेखे तो कुन्दन ने दिल्ली ही फतह की होगी। पर स्वयसेवको का दिल जरा भी नही पिघला था।

मन्दोदरी का विलाप बामुश्किल अपने ढर्रे पर आया।

दशको के मन रमने लगे। सज्जनकुमार अपने असली ठिकाने पर पहुँचा। मच की बायी तरफ कनात मे एक खिडकी। दाताओ के नाम और नगदी के माईक तक पहुँचने का जरिया। मच पर आज राम का कोई काम न था। उसके धनुष-बाण खूटी पर लटक रहे थे। इसीलिए राम इस अमूल्य खिडकी के मोर्चे पर डटा हुआ था।

धडाधड चार दानी पहुँचे। सज्जनकुमार ने नगदी हस्तगत की। नाम पूछे। एक गुप्त दान था। गुप्त-दान से सज्जनकुमार बेहद प्रसन्न! गुप्त दान का माहात्म्य तो और भी बडा। फिर मन्दी मे जितने चाहो, गुप्त दानो की घोषणा करो भले ही। जोश चढाने की कला मे सज्जनकुमार पारगत। लेकिन आज मन्दी नही थी।

"हैं! क्या? इक्यावन रुपये?"

मारने साड की तरह आकर एक ने खिडकी से सिर भिडाया। सज्जन कुमार ने झुककर दर्शन किए। किसी ने कहा दानवीर कर्ण मर गया?

"हाँ हा, इक्यावन रुपये!" दानवीर को सज्जनकुमार की सज्जनता पर क्रोध आ गया, 'इस भगी की यह औकात कैसे हुई? घर की औरतें तो सारे मुल्क का हँगा सिर पर उठाती हैं और यह लाट साहब हमारे सामने ताल ठोकता है! मैं भी देखता हूँ, कितनी देर?"

दानवीर की बात सौ टच। कच्चे पाखाना का चलन अपने मुल्क से उठ थोडे ही गया है! आदमी का हँगा आदमी उठाए, इससे बढ़कर

अहिंसा और आजादी तो और क्या होगी ! गांधी बाबे का महत्त्व इस देश म निपट थोडे ही जाएगा, कुन्दन के बहाने दानवीर के मुख पर सत्य की ध्वजा फहरा गई। रामलीला मे रामराज्य का सपना पूर्ण हुआ जैसे।

अब और सज्जनकुमार से नही ठहरा गया। गिरते पडते मच पर पहुँचा। निरन्तर घडिग बजे। परन्तु इस दानवीर कर्ण का नाम इतना सस्ता न था। उसके गुणगान मे ही माकूल मुद्राएँ न बना सके तो सज्जन-कुमार की कला पर हजार लानत ! उसने गला भली प्रकार साफ किया। दोहे पढे। शे र पढे। नोटा को चूटी मे पकड कर लहराया।

दो घडिगो के पश्चात सज्जनकुमार की वाणी गूँजने लगी, "भक्त बडा या भगवान ! बोलो भक्तराज की जय ! माताओ एव बहनो, बूढो-जवानो, गोरो और कालों ! जिगर थामकर सुनो, अब इनकी बारी है। आपके गाव के नामी, गिरामी सेठ साहब श्रीमान् फत्तूमलजी रामकथा और रामलीला के ममन ! आप गुणी और गुण के कदरदान हैं, इसीलिए मती मदोदरी के मार्मिक अभिनय से अतीव प्रसन्न होकर, मडली को इक्यावन हाँ सा इक्यावन रुपये अर्पित करते हैं। बोलो सियावर राम-चन्द्र की जय !" घडिग ! घडिग ! घडिग !

तीसरा घडिगा बजा और न बजा, रामायण शुरू। इस बार लोग हिले तक नही। परन्तु स्वयसेवक अपना कर्तव्य नही भूले। तुरन्त सँभले। कुन्दन की स्मरण-शक्ति नशे मे और बढा दी थी, भूली बिसरी गालियाँ भी मानो उसके कण्ठो आन विराजी। देशी दारू के भभके म सेठ साहब के परिवार का काला कीचड हुआ। आवश ने एक हरे नोट का पत्ता उछाला। स्वयसेवक सजग थे उसे नीचे नही गिरने दिया। कुन्दन को बिठाने के बाद वे मच की तरफ लपके।

मदोदरी अपनी भूमिका भूल गई। ढोलकिये ने जो थाप मारी, तो हथेली ढोलक के कलेजे जा लगी। वह भागा और खूटी पर से दूसरी ढोलक उतार लाया।

घड़िग ! घडिग !

"हाँ, तो सायबान कदरदान !"

सज्जनकुमार को कही से कुछ भी उधार नही लाना था। परन्तु

मन ही-मन सोचा उसने भी होगा, कि उसकी अग्नि परीक्षा है। उत्तीर्ण रहने पर मैनेजर साहब कुछ कसर थोड़े ही रखेंगे। बरशीश की बोतल का काल्पनिक घूट भरकर ही उसने इस बार माईक पकड़ा होगा।

धड़िग ! धड़िग ! धड़िग !

मदोदरी मच पर ठहरे और न ठहरे, हारमोनियम और गवैया हट जाए भले ही, आज तो सज्जनकुमार और ढातकिया पर्याप्त होंगे। रामलीला आज व्यर्थ तामझाम से मुक्त हो चुकी थी।

कितनी देर ?

फत्तूमलजी ने मसखरी नहीं की। चुटकी-भर पगार का एक सरकारी भंगी याने सफाई मजदूर क्या खाकर उनके सामने ठहरता ! मकोड़ा गुड़ की भेली खींचकर नहीं ले जा सकता।

अपने पास की नगदी तो फत्तूमलजी ने इक्यावन के मोर्चे पर ही लुटा डाली थी, परन्तु उनकी साख का मोल किसने आंका था ! नीचे झुककर उन्होंने ककर उठाए और मच पर फेंककर सज्जनकुमार को ताकीद की, "फी ककर सौ का नोट समझना ! इस हरामखोर की अटी के सारे बल निकाल डाल। सवेरे हवेली आकर ककर गिन देना और रुपये लेते जाना !"

सज्जनकुमार ने बाअदब मुजरा किया। फिर मच पर बिखरे ककर चुगने लगा। अब कुंदन की जेब उघड़ते कितनी देर लगती ? धड़िग, धड़िग ! अटा चित्त !

मदोदरी पसीने से भीग गई। ढोलकिये की कलाई झड़ गई। मनेजर साहब मच पर चढ़ गए। अगले दृश्य में अशोक वाटिका में दिखने को तैयार रावण अर्थात लाला महाराज, जोश के मारे पहले ही मच पर दिखने लगे।

कुंदन ने कुर्ते की सारी जेबें फाड़ लीं। कुछ नहीं निकला। मारे झल्लाहट के वह नीचे झुका और दोनों हाथ भरकर मच की दिशा में मिट्टी उछाल दी। मच का कुछ नहीं बिगड़ा। लोगों की आंखें रेत से भर गईं। स्वयंसेवकों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। डंडे उठाकर जो लपके, फिर तो कुंदन को रामलीला मैदान की सीमा से आगे तक खदेड़कर ही विश्राम लिया।

आरती के थाल सज गए।

राम, रावण, सीता, मदोदरी, लक्ष्मण, हनुमान और मैनेजर साहब ने मिलकर फत्तूमलजी को ऊँचा उठा लिया। (मडली मे सचमुच की स्त्री एक भी नही थी) जयकारो के बीच मच पर ला उतारा। राम दरबार का दृश्य लगा। फत्तूमलजी की खातिर मूढा मँगवाया गया। भगवान राम के करीब बिठाकर उनकी तस्वीर उतारी गई। मडली का कैमरा बपराना आज सार्थक हुआ। दर्शक हृदयदियाँ तोडते मच के किनारे तक आ पहुँचे। फत्तूमलजी का जीवन सुधर गया।

इन्ही क्षणो मे कुन्दन एक अँधेरी गली म कुत्तो और अपनी लडखडाहट से एक साथ जूझ रहा था। कदम नशे से नही, स्वयसेवको की मार से लडखडा रहे थे। बेरहमो ने सारा नशा उतार डाला था। आखिर लडखडाहट सँभली नही, तो धराशायी हो गया। कुत्ते पहुचे और सूघकर चले गए। कुन्दन ने राहत की साँस लेकर आँखें भीच ली।

सवेरे ही उसकी घरवाली मेरे पास चली आई। मुझे छोड उसका दुखडा सुनता भी कौन? आँखें भीचने से लेकर बरामद होने तक कुन्दन के बुरे हाल सुनाकर उसने कहा, "कल ही पगार ली बताते हैं। घर पर चूल्हे के पीपा मे चूहे नाच रहे हैं और आप पहले ठेके और फिर रामलीला जा पहुँचे। दारू ने इनकी मत ही मार दी। नही तो क्या इतना भी नही जानते! इतने बडे सेठ के आगे हम नाकुछ लोगो का कैसा जोर? पर्वत से जाकर कक्कर क्यो सिर फुडवाए! पर नशा कुछ सोचने देता तो सोचते!"

नशा! मैंने सोचा—अन्धे को भी दिखे जैसी बात कि इस सत्यानाश की जड म नशे के सिवाय कुछ नही था। परन्तु नशे म क्या अकेले कुन्दन ही था? समूची रामलीला और उसके दर्शक क्या मदहोश न थे? और सबसे बढकर मदहोश कोई था, तो फत्तूमलजी! नशे की भी औकात होती होगी अपना अपना ही होता होगा नशा!

कुदन की घरवाली रोने बठ गई। मैंने उसे उठाया और लेकर मैनेजर साहब के समक्ष प्रस्तुत हुआ। उन्होने पूरा वृत्तात सुन लिया। कुछ देर शात रहे। फिर अथाह गहराई से बोलने लगे, "आप साथ चले आए ह, तो मान

की हुई दौलत
रखने के सिवाय दूजा रास्ता नही कि भगवान को भेंट
लौटाई नही जाती !"
ाथ मे लिया।

लूगी के लपेटो से आजाद कर उन्होंने नोटो का बडल ह के आगे फेंक
तीन दस दस के नोट बेरहमी से खीचकर कुदन की पत्नी है !"
दिये, "उठा और चलती बन और मेरे पास कुछ भी नहीं
घडिग !
र यह आवाज
दूर या पास, ढोलकिया कही भी नज़र नही आया। फि
कहा से आई ?

□

मालचन्द तिवाड़ी

जन्म 19 मार्च 1953

□

कृतियाँ

'पानीदार तथा अन्य कहानियाँ ।

धड़ (राजस्थानी) कहानी-संग्रह ।

माळावण' (राजस्थानी) उपन्यास ।

□

शिखर (शिमला) की अखिल-भारतीय कथा प्रतियोगिता में कहानी 'पानीदार' को प्रथम पुरस्कार ।

'सारिका' तथा साप्ताहिक हिंदुस्तान' में कहानियाँ पुरस्कृत ।

□

सम्प्रति राजकीय सेवा में ।

□

सम्पर्क कानू बास, श्रीडूंगरगढ़ ।